हमारे सन्त

लेखक
श्री रघुवीरशरण 'मित्र'

एकमात्र वितरक :
भारतीय साहित्य प्रकाशन
२३२-स्वराज्य पथ, सदर मेरठ
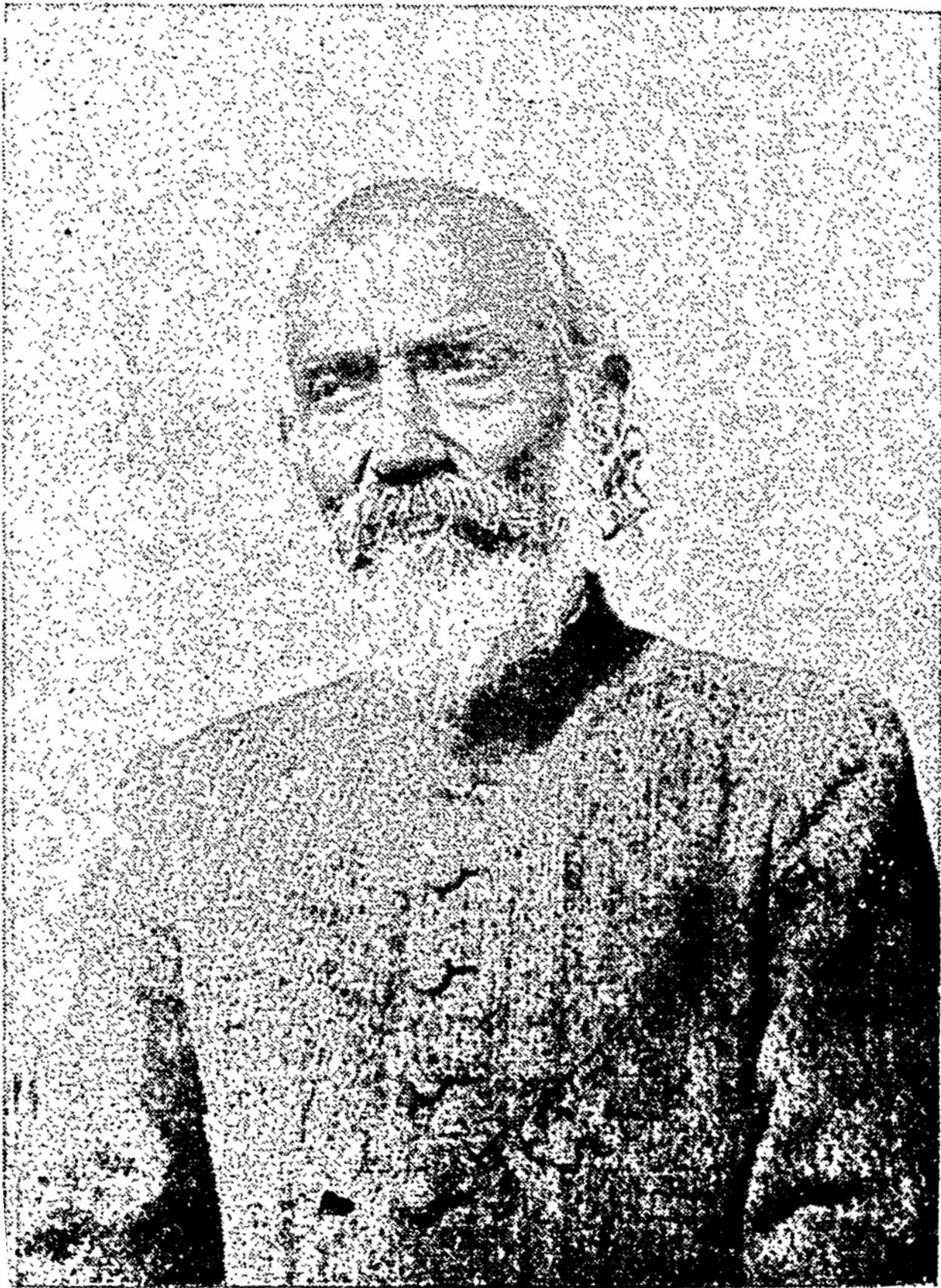
राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन

भारत और भारती के सूर्य

राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडन

को

सादर समर्पित

हम सब कुछ खो बैठे थे, फिर भी अन्धकार में कुछ ऐसे दीपक जलते रहे जिनसे धरती पर अमर प्रकाश बरसता रहा है। स्वतन्त्रता, शान्ति और सत्य के जो मंगल स्वर भारतीय सन्तों की वाणी से निकले वे ही तो मानवता के उज्ज्वल दीप हैं। जन जागरण के जो भक्ति भाव हमारे सन्तों ने जन जन में गाये हैं वे हमारे सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक उत्थान के मूलाधार हैं। उनकी भक्ति, उनकी तन्मयता, उनका त्याग, उनका तप मानव चरित्र विकास का वह सूर्य है जो अन्धकार को डसता रहता है।

भौतिकता के उत्कर्ष काल में आध्यात्मिकता की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कमल के लिए सूर्य की। आज के असन्तोष में हमारे सन्तों के स्वर ही सन्तोष दे सकते हैं, मानव को मानव के निकट ला सकते हैं। हिंसा, असत्य और अशान्ति को हटाने तथा दुई के स्थान पर एकता की ज्योति जगाने का काम हमारे सन्तों ने ही किया है।

अतः मानवता से दूर अतृप्ति में भटकते हुए मृग-मनुष्य को मैं अपने देश के कुछ प्रमुख सन्तों का सत्संग इस आशा से कराता हूँ कि अनीति, अनैतिकता और अशान्ति भक्ति भावना में बदल जाये।

—रघुवीरशरण 'मित्र'

क्रम	पृष्ठ

हमारे सन्त

१

सन्त नामदेव

मानव में जब चेतना नहीं रहती तो परिक्रमा करती हुई कोई आवाज़ जागती है। धरा जब डगमगाने लगती है तो दिव्य-ज्योति-सम्भूत कोई न कोई शक्ति प्रकट होती है। परिस्थितियाँ जब प्रतिकूल हो जाती हैं तो किसी न किसी अनुकूल शक्ति के दर्शन होते हैं। भौतिकता जब भटक उठती है तो आध्यात्मिकता जन्म लेती है। नश्वरता जब वीभत्स नृत्य करती है तो शाश्वत सत्यों से अभिभूत किसी न किसी आशा का आगमन होता है।

भारतीय सन्त परम्परा में नामदेव कथित आदित्यों के ही मूर्त रूप हैं। प्रेम, अहिंसा, सत्य, शान्ति, त्याग, भक्ति, ज्ञान और नैतिकता के स्वरूप सन्त नामदेव भारत के स्वनामधन्य सन्त हैं। नामदेव के प्रभाव से तत्कालीन कितने ही यशस्वी सन्त हुए, एक प्रकार से वे भारतीय सन्त परम्परा के स्रोत हैं। उनके कीर्तनों से ही उन सन्तों का उदय हुआ जो मृत्यु में जीवन हैं। नामदेव से ही वह सन्त समागम शुरू होता है जो भारत का सबसे उज्ज्वल धन है।

जिस समय इनकी वीणा बजी वह समय भारतीय संस्कृति और धर्म पर आघातों का समय था। न कोई धर्म का स्थिर रूप था, न समाज किसी सुव्यवस्था में था, न राजनीतिक शान्ति थी, न मानसिक आनन्द था। विदेशी संस्कृति के आक्रमणों से मन्दिरों में

मूर्त्तियों की गर्दनें कटी पड़ी थीं, वलात् धर्म परिवर्तन शुरू हो गये थे। ईश्वर को मतमतान्तरों में मिटाया जा रहा था, तलवार के वल से भारत माता की कोख फोड़ कर उसके हर उत्थान की हत्या के लिये खूनी तलवार का नंगा नाच था।

साधना के तीन अंग हैं-- कर्म, ज्ञान और भक्ति। ये तीनों ही अंग विकृत हो चले थे। कर्म अर्थशून्य विधिविधानों से निकम्मा होने लगा था, ज्ञान रहस्य की विडम्बनाओं से पाखण्डपूर्ण हो चला था, और भक्ति इन्द्रियोपभोग की वासना से कलुषित की जाती थी। भक्ति का जन्म श्रद्धा और प्रेम से है, जहाँ उपासना में श्रद्धा का पूज्य भाव नष्ट हो केवल प्रेम रहा वहाँ भक्ति कोरी वासना रह जाती है।

अत: जब आपस की फूट से राजपूतों की तलवार देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा करती करती कुन्द हो गई और कामिनियों की निगाहों में डूबकर टकराती हुई सो गई तो भारत को उन महान सन्तों ने ही बचाया जो आपत्ति काल में सदैव बचाते रहे हैं।

सन्त नामदेव का आविर्भाव भी ऐसे ही आपत्ति काल में हुआ। नामदेव भक्ति का श्रेष्ठ एवं सरल स्वरूप लेकर खड़े हुए। एकेश्वरवाद के अनिश्चित स्वरूप को, जो कभी ब्रह्मवाद की ओर जाता था और कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर ढुलकता था, सन्त नामदेव ने एक सर्वग्राह्य सुव्यवस्थित स्वरूप दिया। जाति-पाँति, भेद-भाव का त्याग और ईश्वर भक्ति के लिये मनुष्य मात्र को समान अधिकार दिलाने का सूत्रपात नामदेव से ही शुरू हुआ।

महाराष्ट्र के सन्तों में नामदेव का नाम सबसे पहले लिया जाता

है। इनका जन्म वि० सम्वत् १३२७ कार्तिक शुक्ला ११ रविव को ग्राम नरुसी बमनी जिला सतारा महाराष्ट्र में हुआ। ये जा के छीपी थे, पिता का नाम श्री दामा शेट और माता का गोणा था। इनके गुरु सिद्ध यशस्वी सन्त खेचरनाथ नाथपंथी योगमार्ग प्रेरक श्री ज्ञानदेव जी महाराज रहे।

काल-परिस्थिति के अनुसार ये सगुणोपासक भी रहे और निर्गुणोपासक भी। पहले ये साकार पूजा करते थे, पर बाद में गुरु ज्ञानदेव के संग से नाथपन्थियों द्वारा प्रचलित धर्म में लाये गये। बस यहीं से ये अन्तर्मुख साधना द्वारा सर्वव्यापक निर्गुण ब्रह्म से साक्षात्कार करने लगे।

नामदेव भगवान के वियोग में हर समय व्यग्र रहते थे। ज्ञानदेव इनको समझाते थे कि भगवान केवल एक ही जगह नहीं हैं, वह तो हर जगह हैं। वे तो सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं। यह मोह छोड़ो। तुम्हारी भक्ति अभी कच्ची है। जब तक तुम्हें निर्गुण पक्ष की अनुभूति नहीं होगी तब तक तुम पकोगे नहीं।

ज्ञानदेव समझा ही रहे थे कि परीक्षा भी शुरू हो गई। सिर मुँडाते ही ओले बरसने लगे। घूमते हुए जब ये एक गाँव में पहुँचे तो सन्तमण्डली पर एक कुम्हार घड़ा पीटने का पिटना लेकर पिल पड़ा और खूब प्रेम से साधुओं के सिरों की मरम्मत शुरू कर दी। जब तक सन्त ज्ञानदेव, उनकी साधु बहिन मुक्ताबाई और उनके दो अन्य साधु भाइयों के सिर पर डंडे पड़ते रहे, तब तक वे तो शान्ति से सहते रहे। पर जब सन्त नामदेव की खोपड़ी पर डंडा पड़ा तो वे अकड़ कर सामने खड़े हो गये और डंडा छीन लिया।

कुम्हार ने हँस कर कहा— "सब साधु पक्के, नामदेव कच्चे।" मानो यही सन्त ज्ञानेश्वर का अपने शिष्य को गुरुमंत्र था। इस मंत्र को पाकर नामदेव कच्चे सन्त से पक्के सन्त हो गये।

सन्त नामदेव के बचपन से ही चमत्कार प्रसिद्ध हैं। एक बार इनके पिता दामा सेठ घर से कहीं बाहर गये। वे विट्ठल भगवान् की पूजा का भार नामदेव को सौंप गये। नामदेव ने बड़े प्रेम से पूजा की और भगवान् के भोग को दूध का कटोरा भर कर मूर्त्ति के सामने रखा एवं अपने नेत्र बन्द कर लिये। जब नेत्र खोले तो देखा दूध वैसा ही कटोरा भरा रखा था। बालक ने सोचा कि भगवान् नाराज हैं जो दूध नहीं पीते। अतः उसने हठ करते हुए रोकर कहा— "हे भगवान्! दूध पियो, शीघ्र पियो। नहीं तो मैं जीवन भर कभी भी दूध नहीं पीऊँगा।"

बच्चे की प्रतिज्ञा सुनते ही मूर्ति मुखर हो उठी और गट गट दूध पी गई एवं फिर रोज़ नामदेव के हाथ से भगवान् दूध पीते रहे।

एक बार सन्त नामदेव की कुटिया में एक ओर आग लग गई। आपने प्रेम विभोर होकर दूसरी ओर की वस्तुएँ भी अग्नि अर्पण करनी शुरू कर दीं, और मस्त होकर बोले— "स्वामी! आज तो आप लाल लाल लपटों का रूप बनाये बड़े अच्छे पधारे, किन्तु एक ही ओर क्यों? दूसरी ओर की इन वस्तुओं ने क्या अपराध किया है, जो इन पर आपकी कृपा नहीं हुई? आप इन्हें भी स्वीकार करें।"

नामदेव का यह कहना था कि अग्नि भगवान् को ठंडा पसीना आ गया, वे सन्त की आर्त्त वाणी सुनते ही शान्त हो गये। जो कुटिया जल गई थी वह भगवान् स्वयम् मज़दूर बन कर बना गये।

एक बार नामदेव जी किसी गाँव के वर्षों से बन्द सूने मकान में ठहरने लगे। लोगों ने मना किया और कहा— "इसमें एक भयंकर भूत है, वह इस घर में ठहरने वाले कितने ही लोगों को खा चुका है। वह ब्रह्मराक्षस बड़ा खूनी है।"

इस पर नामदेव जी ने कहा— "मेरे विट्ठल ही तो भूत भी बने होंगे।" और फिर उस मकान में अकेले ठहर गये।

आधी रात को वह भयंकर भूत आया। उसका शरीर बड़ा भारी था। वह लम्बी चौड़ी विकराल प्रेतात्मा देख नामदेव जी भाव-मग्न होकर नृत्य करने और गाने लगे—

भले पधारे लम्बक नाथ !
धरनी पाँव, स्वर्ग लौ माथा, जोजन भरके लाँबे हाथ।
शिव सनकादिक पार न पावैं, अनगित साज सजाये साथ।
नामदेव के तुम ही स्वामी, कीजै प्रभु जी मोहि सनाथ ।।

भगवान् की भक्ति के सामने भला कहीं प्रेत का प्रेतत्व ठहर सकता है! वह भयावनी आकृति शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्री पाण्डुरंग जी में बदल गई। उस दिन से फिर उस घर में वह ब्रह्म-राक्षस नहीं रहा।

ऐसे ही एक बार नामदेव जी जंगल में रोटी बना रहे थे। रोटी बनाकर भोजन करने के हेतु लघुशंका आदि से निवृत्त होने गये। जब लौटे तो देखते क्या हैं कि एक कुत्ता मुँह में रोटी दबाये भागा जा रहा है। नामदेव जी घी की कटोरी लेकर उसके पीछे यह कहते हुए दौड़े— "प्रभु! ये रोटियाँ रूखी हैं, घी लगा लेने दीजिये। फिर भोग लगाना।" इस भक्ति भावना से भगवान् उस

श्वान शरीर से ही प्रकट हुए और भक्त नामदेव उनके चरणों पर गिर पड़े।

एक बार जब ये सन्त ज्ञानेश्वर के साथ तीर्थयात्रा करके लौटे तो मार्ग में बीकानेर के पास कौलायत गाँव में एक कुए पर इन्हें प्यास लगी। झाँक कर देखा तो कुआ सूखा था। ज्ञानेश्वर जी सिद्ध योगी थे। वे लघिमा सिद्धि से कुए के भीतर पृथ्वी में गये एवं जल पी नामदेव जी के लिये जल ले आये। पर नामदेव जी ने वह जल पीना स्वीकार नहीं किया और कहा—— "मेरे विट्ठल को क्या मेरी चिन्ता नहीं है, जो इस प्रकार पानी पीऊँ ?" सहसा कुए में पानी भर गया और जल ऊपर तक आ पहुँचा। इस प्रकार सन्त ने सूखा कुआ सबके लिये फिर जल से भरवा कर पानी पिया।

इनकी भक्ति के और भी अनेक चमत्कार हैं, जैसे नागनाथ के शिव-मन्दिर द्वार का इनकी ओर घूमना, गउओं के थनों में सबकी पूर्ति के लिए दूध का होना, आदि। इनकी भक्ति भेद-भाव रहित, 'जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' स्वरूप की थी। ये सगुणोपासक भक्त भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप मानते हैं, किन्तु भक्ति के लिये सगुण रूप ही स्वीकार करते हैं। सगुण-मार्गी भगवान् के प्रकट रूप के साथ उनके अव्यक्त रूप का भी निर्देश करते रहे हैं। आइये पहले नामदेव की सगुणोपासना के पद्य गायें :——

दसरथ-राय-नंद राजा मेरा रामचन्द।
प्रणवे नामा तत्व रस अमृत पीजै॥

*

धनि धनि मेधा-रोमावली, धनि धनि कृष्ण ओढे कावँली ।
धनि धनि तू माता देवकी, जिन गृह रमैया कँवलापति ।।
धनि धनि वनखँड वृन्दावना, जँह खेलैं श्री नारायना ।
वेनु वजावैं, गोधन चारैं, नामे का स्वामि आनन्द करै ।।

और आगे यह उनकी निर्गुण वाणी सुनिये :—

माइ न होती, वाप न होते, कर्म्म न होता काया ।
हम नहिं होते, तुम नहिं होते, कौन कहाँ ते आया ।।
चन्द न होता, सूर न होता, पानी पवन मिलाया ।
शास्त्र न होता, वेद न होता, करम कहाँ ते आया ।।

*

पांड़े तुम्हरी गायत्री लोधे का खेत खाती थी ।
लैकरि ठेंगा टँगरी तोरी लंगत आती थी ।।

पांड़े तुम्हरा महादेव धौल वलद चढ़ा आवत देखा था ।
पांड़े तुम्हरा रामचन्द सो भी आवत देखा था ।।
रावन सेंती सरबर होई, घर की जोय गँवाई थी ।
हिन्दू अन्धी तुरुकौ काना, दुवौ ते ज्ञानी सयाना ।।

हिन्दू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद ।
नामा सोई सेविया, जँह देहरा न मसीद ।।

नामदेव की वाणी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्गुण पन्थ के लिये मार्ग निकालने वाले नाथ-पन्थ के योगी और

भक्त नामदेव थे। हिन्दी साहित्य में जो ज्ञान मार्ग के सन्त कवि हुए हैं उनका मूल नामदेव से ही आरम्भ होता है। नामदेव ने भूली भटकी जनता को उपासना का एक निर्दिष्ट मार्ग सुझाया। उनके भजनों में, उनके पद्यों में ईश्वर की निराकार ज्योति और उपासना के अमर मन्त्र हैं।

यह प्रसन्नता की बात है कि जब भारतीय स्वतन्त्रता और संस्कृति का सूर्य अस्त हो रहा था, जब मानव मानव के प्रति पिशाच बना हुआ था, जब हम लक्ष्यहीन होकर मँझधार में गोते लगा रहे थे तब सन्त नामदेव ने हमारी डूबती हुई नाव को बचाया।

यह महिमा भारतीय सन्तों की ही रही कि जिसके सामने विषमता और साम्प्रदायिकता की तलवार टूक-टूक होकर गिर पड़ी, मतमतान्तरों के अंगारे धधक धधक कर बुझ गये, धर्मान्धों की आँधी उठ उठ कर शान्त हो गई, फूट के लाल पीले बादल गरज गरज कर बरस न सके। शत्रुता की अँधेरी, मित्रता की रोशनी में बदल गई।

आज हम न सतीत्व की रक्षा देखते हैं, न गौ ब्राह्मणों का सम्मान है, न मांस भक्षण रुक रहा है। वह भी एक समय था जब सन्तों के प्रभाव से मानव स्वेच्छापूर्वक शान्त था, वह स्त्री और बच्चों पर अत्याचार नहीं करता था, न इतनी साम्प्रदायिक घृणा थी, न हर चौराहे और बाजार में माँस की खुली दूकानें थीं, अर्थात् न इतने शराबी थे, न इतने कबाबी थे। चारों ओर धार्मिक एवं सांस्कृतिक शान्ति थी।

ये धर्म, संस्कृति और शान्ति के अग्रदूत भारतीय सन्त ही थे जिनके आदर्श आज भी भारत से सारी धरती पर शान्ति का सन्देश दे रहे हैं, महात्मा गाँधी जिनकी आत्मा के स्वरूप हुए। भारतीय सन्त परम्परा विश्व की सबसे अधिक प्रकाशमान पूर्णिमा है और सन्त नामदेव उस शरद पूर्णिमा की रात्रि में ज्योतिवन्त शीतल चन्द्रमा हैं। इन्होंने अपने चरणों से धरती पर जो अमिट अक्षर लिख दिये हैं वे न मिटेंगे और न मानवता को मिटने देंगे। सत्य के ये दीपक जले, जलते रहे और दिवाकर की तरह तपता हुआ इनका तप प्रकाश देता ही रहेगा।

२

सन्त ज्ञानेश्वर

"दुष्टों की कुटिलता जाकर उनकी सत्कर्मों में प्रीति उत्पन्न हो और समस्त जीवों में परस्पर मित्र भाव वृद्धिगत हो। अखिल विश्व का पाप-रूप-अन्धकार नष्ट होकर स्वधर्म-सूर्य का उदय हो, उसका प्रकाश हो और प्राणीमात्र की सदिच्छाएँ पूर्ण हों। इस भूतल पर अखिल मंगलों की वर्षा करने वाले भगवद् भक्तों के समूह की सदा प्राप्ति हो।"

यह है वह प्रसाद याचना और सन्देश जो सन्त ज्ञानेश्वर की वाणी से फूटकर जन जन में प्रवाहित है। सन्त ज्ञानेश्वर जन्मजात सन्त थे। इनका जन्म सम्वत् १३३२ भाद्र कृष्णा अष्टमी मध्यरात्रि को महाराष्ट्र में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री विट्ठल पन्त था और माता का नाम रुक्मिणीबाई। ये तीन भाई और एक वहिन थे-- निवृत्ति नाथ, ज्ञानदेव और सोपानदेव, तथा वहिन का नाम मुक्तिबाई था। ये चारों ही सन्त थे।

एक वार जब निवृत्तिनाथ की आयु सोलह वर्ष की थी, ज्ञानेश्वर की चौदह वर्ष की, सोपानदेव वारह वर्ष के थे और मुक्तिवाई ग्यारह वर्ष की थी, तो यह वाल साधु-मंडली 'आलन्दी' से पैदल चलकर 'पैठण' आई। ये चारों सन्त ब्राह्मणों से शुद्धि-पत्र लेने आये थे। यद्यपि इन चारों परम शुद्ध साधुओं को शुद्धि-पत्र की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इनकी चरण रज से तो उस समय

भी सारा लोक शुद्ध था, पर शास्त्रों की मर्यादा जो रखनी थी, इसलिये शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों से शुद्धि-पत्र लेना आवश्यक था।

पर जब सन्त ज्ञानेश्वर ने ब्राह्मण-चरण छू उनसे शुद्धि-पत्र माँगा तो ब्राह्मण ने आगबबूला होकर कहा— "आया कहीं का ज्ञानदेव, मेरे दर्वाज़े पर बँधे हुए इस भैंसे का नाम भी ज्ञानदेव है।"

ज्ञानदेव ने शान्ति से उत्तर दिया— "भैंसे में और हम में अन्तर क्या है? नाम और रूप तो कल्पित हैं पर आत्म तत्त्व तो एक ही है। भेद की कल्पना ही अज्ञान है।"

इस पर ब्राह्मण देवता के क्रोधानल में घी पड़ गया। उन्होंने ताव खाकर कहा— "अच्छा यह बात है!" और फिर चाबुक निकाल कर भैंसे की पीठ पर तड़ातड़ कई चाबुक मार दिये।

किन्तु चाबुक पड़े भैंसे की पीठ पर और उनकी चोटें लगीं ज्ञानेश्वर की पीठ पर। चोट चिह्न ज्ञानेश्वर की कमर पर चमक उठे, रक्त जमे काले काले निशान साधु बालक की पीठ पर उपड़ आये। साधु की कमर से रक्त चूने लगा।

पर इतने पर भी ब्राह्मण को सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा कि यदि सभी में एक आत्मा है तो क्या यह भैंसा तेरी ही तरह बोल भी सकता है। यदि यह भैंसा तुम्हारे ही जैसा है तो इससे 'ओ३म्' बुलवाओ। तुम जैसी ज्ञान की बातें करते हो वैसी ही इससे करवाओ।

ज्ञानदेव ने भैंसे की पीठ पर हाथ रक्खा और भैंसा 'ओ३म्' का उच्चारण कर वेद मन्त्र बोलने लगा। यही नहीं ज्ञानदेव ने उनको कुछ मृतकों के सशरीर दर्शन भी कराये। श्राद्ध के दिन पितरों को

'आगन्तव्यम्' कहकर बुलाया और उन्हें भोजन कराया।

सन्त ज्ञानेश्वर बाल्यकाल में ही पूर्ण साधू थे। इन्होंने अपनी इसी बाल अवस्था में ही "ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ" की रचना की। गीता का स्वानुभूति भाष्य सुनाया। हमारे इस सन्त के और भी कितने हो चमत्कार देखकर उस काल के बड़े बड़े पण्डित चकित हो गये।

ये चमत्कार देखकर ब्राह्मण के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह लज्जा से जमीन में गड़ गया। उसने ज्ञानदेव के पैरों में गिरकर क्षमा माँगते हुए कहा–– "मैं अज्ञानी हूँ। मुझे क्षमा करो!"

पर काम क्रोध मद लोभ मोह से दूर सन्त ने ब्राह्मण को उठाते हुए कहा– "तुम भी ज्ञानदेव हो, क्षमा कौन किसे करेगा?"

धन्य है सन्त ज्ञानेश्वर की अखण्ड एकात्म भावना। क्षमा, यही तो पृथ्वी का धर्म है। सब में एक ही आत्मा, आत्मैक्य का अनुभव ही तो साधुतत्त्व की प्राप्ति है। सब प्राणियों में एक ही आवाज़ गूँजती है। भिन्न भिन्न दीखते हैं पर वास्तव में भिन्न कोई भी नहीं। भिन्नता झूठ है और एकता मूल है।

संक्षेप में यह है एक वह आदर्श जो सन्त ज्ञानेश्वर की आत्मा का स्वरूप है। सन्त ज्ञानेश्वर के पास योग की सभी सिद्धियाँ थीं। वे जन्म से योगिराज थे। वे ज्ञान की साक्षात् मूर्ति थे। वे सकल आगम के वेत्ता थे। परमार्थ उनके जीवन का लक्ष्य था।

सन्त का कर्म जीव की उन्नति है। प्राणियों को भजन में लगाना, उन्हें सत्कर्मों के लिये प्रेरणा देना, दया और धर्म का रास्ता दिखाना सन्त की प्रवृत्ति में शामिल हैं। जीवों को कष्ट से मुक्त करने के लिये ही तो सन्त का प्रादुर्भाव होता है। लौकिक और

पारलौकिक मुक्ति के लिये ही सन्त के रूप में ईश्वरीय शक्ति अवतीर्ण होती है।

जिसने क्रोध पर विजय पा ली, जो क्षमा का साक्षात् स्वरूप है, जो सत्य और शान्ति का देवता है, वही सन्त है।

सन्त ज्ञानेश्वर भारत के महान सन्त हैं। उन्होंने स्थान स्थान पर घूम जो ज्ञान वाक्य दिये हैं वे अमर करने वाले अमर वाक्य हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो ज्ञानेश्वर ने जन्म जन्म में तप तप कर जो अनुभूतियाँ की हैं उन्हीं का सार वे प्राणियों में सद्-भावना और मानव कल्याण के लिये छोड़ गये हैं। उनके दो प्रवचन इस प्रकार हैं :—

"जब तक इच्छा बनी हुई है, तब तक उद्योग भी है, पर संतोष हो गया तब उद्योग समाप्त हुआ।"

*

वैराग्य के सहारे यदि यह मन अभ्यास में लगाया जाये तो कुछ काल बाद यह स्थिर होगा। कारण, इस मन में एक बात बड़ी अच्छी है– वह यह कि जहाँ इसे चसका लगता है, वहाँ यह लग ही जाता है। इसलिये इसे सदा अनुभव सुख ही देते रहना चाहिये।

परम सुख वहीं है जहाँ मन लीन है। इसलिये मन को अभ्यास में लगाना चाहिये। इस वाणी में तपस्या का सन्देश है। पर जब वाणी को सन्तोष हो गया, तो उद्योग ही समाप्त हो जायेगा। जिसकी इच्छा नहीं है, वह मुक्त है और जीवन के लिये उद्योग आवश्यक है। इसलिये सन्त की चेतना में अथक उद्योग और परम शान्ति दोनों ही शामिल हैं।

मनुष्य का चरित्र जब भौतिक माया ज़ाल में फँसकर छटपटाने लगता है तब सन्तों की वाणी ही उन्हें मुक्त करती है। संसार पंक में धसे हुए प्राणियों को सन्त ही कमल बनाते हैं। सन्त का हृदय शुद्ध गंगाजल के समान है जो अपने प्रवाह में प्राणियों के मैल को वहाकर ले जाता है।

राजनीति की कठोरता मनुष्य के चरित्र को भौतिक लालसाओं में उलझा कर बहुत बार पतन की ओर ले जाती है। संसार के बड़े बड़े राजनीतिज्ञों ने मानव चरित्र को कानूनों से इतना ऊँचा नहीं उठाया जितना सन्तों ने अपनी निर्मल वाणी से उठाया है। कानून है कि कत्ल मत करो, चोरी मत करो। कानून है कि अनैतिकता की ओर कदम न बढ़ाओ, पर कौन रुकता है। न रिश्वत बन्द है, न चोरियाँ रुकी हैं, न कत्ल बन्द है।

किन्तु सन्तों के सद् उपदेशों से मानव उन सब दुष्कर्मों से बहुत दूर रहता है जिन दुष्कर्मों से यह चमकनेवाला संसार मनुष्य को नहीं हटने देता। यदि मनुष्य को किसी परलोक सत्ता का भय न हो, यदि मनुष्य को पाप और पुण्य का भय न रहे, यदि मनुष्य यह भूल जाये कि चोरी और घूसखोरी से वड़ा भी सुख कोई है, तो वह कभी भी मनुष्य नहीं रह सकता। फिर उसे उसी जंगली की स्थिति में आना होगा जिस जंगली की स्थिति से वह विकास करता करता आज मनुष्य बना।

भारतीय सन्त परम्परा की प्राणी जगत को वहुत वड़ी देन है। भारत के सन्तों ने जीवन और जगत को जितना ऊँचा उठाया है उतना किसी देश ने नहीं उठाया। आज के युग में भी यह सन्त

सन्देश ही गाँधी की वाणी में मुखर है जो मनुष्य को रक्त-स्नान से रोके हुए है। जो अहिंसा सत्य, प्रेम और एकता की वाणी आज सारे संसार को शान्ति प्रदान कर रही है वह भारतीय सन्तों को वहुत प्राचीन परम्परा है। भारत में जो राजनीतिज्ञ हुए हैं वे महान सन्त पहले हैं और राजनीतिज्ञ पीछे। राम, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, कृष्ण, चाणक्य, महात्मा गाँधी आदि सभी पहले सन्त हैं, वाद में राजनीतिज्ञ।

सन्त ज्ञानेश्वर चाहे राजनीतिज्ञ नहीं थे पर उन्होंने मानव चरित्र को वहुत ऊँचा उठाया है। समाज को उन्होंने वे मानव दिये हैं जिनसे परोपकार, सत्य, दया और क्षमा का तेज रहा है। यह साधु परम्परा ही है जो शान्ति-सन्देश देती हुई भारत से अखिल विश्व में भ्रमण कर रही है।

वड़ी वड़ी दाढ़ी और जटाओं वाले तपोवृद्ध साधु तो भारत में वहुत हुए हैं, किन्तु कुल इक्कीस वर्ष, तीन मास और पाँच दिन तक दुनिया में रहकर जीवित समाधि लेनेवाले महान सन्त ज्ञानेश्वर ही हैं। सन्त, ज्ञानेश्वर के ये चार ग्रन्थ वहुत ही प्रसिद्ध हैं— 'भावार्थ दीपिका' अर्थात् ज्ञानेश्वरी, 'अमृतानुभव', 'हरि पाठ के अभंग' तथा 'चांग देव-पासठी'। इनके अतिरिक्त ज्ञानेश्वर ने योगवासिष्ठ पर एक अभंगवृत्त की टीका भी लिखी थी। इस प्रकार जगत को सन्त ने ज्ञान के कितने ही फल और छाया देने वाले वृक्ष दिये हैं।

जगत को सन्त ज्ञानेश्वर की देन वह देन है जिसके मिलने पर ौर कुछ पाने की इच्छा नहीं रहती। उन्होंने सव सुखों की कुंजी गवद्-भक्ति का उपदेश दिया है। उन्होंने कहा कि :—

"बहुत क्या माँगा जाये ! त्रैलोक्य सुख से परिपूर्ण हो, प्राणि-मात्र को ईश्वर का अखण्ड भजन करने की इच्छा हो। भाव बल से भगवान् मिलते हैं, नहीं तो नहीं। जो भगवद् भक्त हैं वे कलंक रहित चन्द्रमा हैं, तापहीन सूर्य हैं, और वे सदा सबको प्रियजन हैं।"

यह सारा ब्रह्माण्ड हरिमय है। तुलसीदास ने भी कहा है "अखिल विश्व में रमा हुआ है राम हमारा"। और कण-कण में व्याप्त उस हरि की उपासना ही सन्त ज्ञानेश्वर के स्वरूप का सार है। उनकी ही भाषा में उनके हरि के दर्शन कीजिये :—

"हरि आया, हरि आया, सन्तसंग से ब्रह्मानन्द हो गया। हरि यहाँ है, हरि वहाँ है, हरि से कुछ भी खाली नहीं है। हरि देखता है, हरि ध्याता है, हरि बिना और कुछ नहीं है। हरि पढ़ता है, हरि नाचता है, हरि दर्शन में सच्चा आनन्द है। हरि आदि में है, हरि अन्त में है, हरि सब भूतों में व्यापक है। हरि को जानो, हरि को बखानो।"

आओ हम सब मिलकर उच्च स्वर से सन्त ज्ञानेश्वर के मन्त्रों का उच्चारण करें, उन सन्त ज्ञानेश्वर के मन्त्रों का जो भगवद्-भक्त हैं, चलने बोलने वाले कल्पतरु हैं, चेतनायुक्त चिन्तामणि के गाँव हैं, और अमृत के चलने बोलने वाले समुद्र हैं।

३

सन्त कबीर

जिस प्रकार सूर्य धरती के अंधकार को दूर करता है उसी प्रकार सन्त के उदय से अन्तर का अंधकार हटता है। सन्त दुःख सहता है और सुख देता है। परोपकार साधु-जीवन का लक्ष्य है। सन्त-मिलन के समान कोई दूसरा सुख नहीं है। यदि किसी को साधु-दर्शन मिल गये तो उसे और क्या चाहिये! आप धन को भूख में भटकते हैं, चाँदी सोने की चाह में जलते हैं, देह की पूजा में खोये हुए हैं, स्त्री, पुत्र आदि की चापलूसी में झखमार रहे हैं, सच-मुच आप बड़े भोले हैं। कितनी मूल्यवान है ज़िन्दगी और कितने सस्ते दामों पर बेच रहे हैं। मत लुटाओ अपनी ज़िन्दगी, क्या आपने नहीं सुना :—

सुत दारा औ सम्पदा पापी के भी होय।
सन्त-समागम हरि-मिलन तुलसी दुर्लभ दोय ॥

इसलिये मेरे साथ सन्त समागम को आओ। सन्त कबीर से सत्संग करो। इस समय इनकी आयु ५५७ वर्ष की है। इनका जन्म जेठ सुदी पूर्णिमा सोमवार विक्रम सम्वत् १४५६ को हुआ था। जन्म दिन से ही इनकी परीक्षा आरम्भ हो गई थी और ये हर परीक्षा में उत्तीर्ण होते रहे।

एक दिन लहरतारा ताल के पास धरती माता की गोद में

एक नवजात शिशु खेल रहा था, जिसके तन पर धूप की चादर तनी हुई थी, और पछुवा हवा आ रही थी। उधर से नीरू नाम का एक जुलाहा निकला। उसने बालक को गोद में उठा लिया और घर लाकर पालने लगा। यही बालक आज आपके सामने सन्त कबीर के रूप में है।

कबीर के गुरु अपने समय के प्रसिद्ध राम-भक्त रामानन्द जी थे। सूफी फकीर शेख तकी से भी उन्होंने दीक्षा ली थी। पर कबीर की उपासना हिन्दू भाव से ही परिक्रमा करती रही। उनकी पूजा हिन्दू धर्म के रूढ़िवादी विचारों की नहीं थी। उन्होंने हिन्दू धर्म में आई हुई संकीर्णता की जड़ें उखाड़ीं और अपनी स्पष्ट वाणी से भूले हुए मानव को रास्ता दिखाया।

कबीर राम भक्त थे, पर उनके राम मनुष्य रूपी राम नहीं थे अपितु पूर्ण ब्रह्म थे। उनके राम हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सबके राम थे। कबीर के राम प्राणी-मात्र के लिये कभी न बुझने वाले दीपक थे। उनके राम और खुदा में कोई भेद नहीं था, जो राम है वही रहीम है, जो ईश्वर है वही अल्लाह है। कबीर के राम प्राणी-मात्र के परम पूज्य आधार और एक अलौकिक ज्योतिस्वरूप हैं, जो जन जन में रमे हुए हैं, जो सबका कल्याण करते हैं, जो न कट सकते हैं, न बँट सकते हैं, अर्थात् एक रस हैं। वह साकार है तो साधु की देह में और निराकार रूप में वह कण कण में व्याप्त है ही। सारांश यह कि जो ब्रह्म ज्ञान मार्ग का निरूपण है वही सूफियों के रंग में रँगा हुआ कबीर का राम है। कबीर के राम उपासना के साथ साथ प्रेम के विषय हैं। इस प्रकार कबीर ने भिन्न भिन्न मतों के मेल से एक नये एवं व्याप्त राम को अवतीर्ण किया जिसमें भारतीय ब्रह्म-

वाद, सूफियों का भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों का साधनात्मक रहस्यवाद, और वैष्णवों का अहिंसावाद शामिल है। आओ हम सब मिलकर उस कबीर पन्थी राम की आवाज़ को पहचानें जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से आ रही है, अपने दशरथ-सुत राम के मर्म को समझें। कबीर की भाषा में :—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मर्म न जाना॥

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूंढै बन माहि।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहि॥

माया है दुइ भाँति की, देखा ठोकि बजाय।
एक मिलावै राम सों, एक नरक लै जाय॥

कबीर दृढ़ विचारों के दृढ़ समाज सुधारक थे। वे फूल से कोमल थे और व्रज से कठोर। मार्ग की कोई भी बाधा उनके लिये बाधा नहीं थी। दुनिया क्या कहती थी, इसकी वह बिल्कुल परवाह नहीं करते थे। कबीर जिधर चले वही श्रेष्ठ मार्ग बन गया। कबीर का आत्मविश्वास अडिग था, आत्माभिमान बेजोड़। उन्होंने जो कुछ कहा स्पष्ट कहा, निडर होकर कहा। समाज के भयंकर भूतों से वे तनिक भी भयभीत नहीं हुए। उन्होंने गर्जकर कहा है :—

हस्ती चढ़िये ज्ञान की सुरति दुरीची डार।
श्वान रूप संसार है भूषण दे झखमार॥

वास्तव में जो निडर है वही सच्चा समाज सुधारक है। जो निर्भय नहीं है वह दुनिया में कुछ नहीं कर सकता। पर निर्भय वही

होगा, जिसकी चादर सफेद है, जिसके जीवन पर कोई कलंक नहीं, जिसका चरित्र उज्ज्वल है, इस स्याही की कालकोठरी में घुस कर भी जो बेदाग निकल आया, जो दूध का धुला हुआ धूप सा है। कबीर दूध और धूप दोनों से उज्ज्वल थे; उनकी चादर बेदाग थी। उन्होंने स्वयं कहा है:--

दास कबीर जतन से ओढ़ी
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

प्रेम जीवन का सबसे मूल्यवान तत्त्व है। प्रेम की कहानी अकथ है। जहाँ प्रेम है वहीं सुख है। यदि मनुष्य के पास प्रेम नहीं है तो वह नरक का कीड़ा है। कबीर कोमल हृदय के प्रेम-सागर थे। उनकी वाणी से प्रेम की महान महिमा बार बार बरसी है। उनकी करनी और कथन में प्रेम सबसे महान और सबसे मूल्यवान है, प्रेम ईश्वर की तरह सर्वव्यापक है। वह जहाँ इच्छा हो वहीं उपस्थित है, पर प्राणों के मूल्य पर, जैसे:—

प्रेम न खेतो नीपजै, प्रेम न हाट बिकाइ।
राजा परजा जस रुचै, सिर दे सो लै जाइ॥

आपा मेटे हरि मिलै, हरि मेटे जग जाइ।
अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोउ पतियाइ॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पण्डित होय॥

कबीर की वाणी में प्रेम की जो कठिनता और अनुभूति व्यक्त हुई है वह सचमुच अकथ है। इन दोहों से प्रकट है कि

कबीर को प्रेम के मार्ग में बहुत से दुःखों का अनुभव हुआ होगा, तभी तो उनके हृदय से प्रेम की ऐसी चुभती हुई पंक्तियाँ निकलीं। वस्तुतः कबीर के प्रेम में ईश्वर का सत्य स्वरूप है, न कि लौकिक नश्वर अंगों का रंगीन चित्रण। कबीर का प्रेम सत्य के प्रति है। उनका विश्वास सर्वव्यापक सत्ता के लिये अडिग प्रेम के रूप में प्रकट हुआ है।

कबीर बहुत ही भावुक थे। उनकी भावुकता "मैं साईं की पिलिया" जैसी पंक्तियों में कितने ही कवियों से आगे बढ़ गई है। उनकी यह भावुकता उनके चरित्र में अमर उदारता बनकर बरस पड़ी। प्रसिद्ध है कि एक बार कबीर की पत्नी लोई पर किसी ने पाप दृष्टि डालकर उसे पाने के लिये प्रयत्न किया। कबीर को जब यह पता चला तो वे अपनी निर्धन किन्तु सुन्दर पत्नी लोई को कन्धे पर बैठा उसके घर पहुँचे और कहा— "लो भाई, अपनी इच्छा पूरी करो।" इस पर वह बहुत लज्जित हुआ और उसने कबीर के चरणों में गिरकर उनसे क्षमा माँगी। शायद इसी अनुभूति के आधार पर कबीर के कण्ठ से यह दोहा निकला हो :—

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होइ॥

मनुष्य के जीवन का धर्म कर्म है। भगवान् कृष्ण ने भी मनुष्य को कर्म का ही सन्देश दिया है। कबीर का भी कर्म में ही विश्वास था। वे साधु पीछे थे, पहले कर्मठ। उन्होंने श्रम करके खाया, फकीर बन कर भीख कभी नहीं माँगी, किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया, जीवन को सड़ाया भी नहीं, जुलाहे का काम भी करते थे और सन्देश

भी देते रहते थे। उनके हाथ चलते रहते थे और कण्ठ गाता रहता था, उनकी उँगलियाँ कपड़ा बुनती थीं और स्वर अमृत देता रहता था। खाली बैठे जबान चलाने वालों के लिये उनकी ये पंक्तियाँ अमर हैं :—

कथनी मीठी खाँड-सी, करनी विष-सी लोइ।
कथनी तजि करनी करै, विष ते अमृत होइ॥

इसलिये हे मनुष्य! तू कर्म से न भाग, जीना चाहता है तो कर्म कर, सन्त कबीर की वाणी अपनी जिह्वा पर रख ले, इससे तेरे भीतर और बाहर प्रकाश रहेगा।

कबीर ने जो सत्य संसार को दिये हैं वे जीवन के लिये अनमोल धन हैं। यदि हम उन सत्यों को कण्ठस्थ कर लें और अपनी जीवन-सिद्धि के लिये माध्यम बना लें तो क्या ही बात है, जन्म और मरण दोनों ही सफल हो जायें। उनके एक एक दोहे पर संसार न्योछावर किया जा सकता है। उनकी अमृत वाणी अमर सत्यों से भरी पड़ी है। उनके दोहों में वे उपदेश हैं जो मृत्यु से मरते नहीं और जीवन से हारते नहीं। आइये, हम और आप कुछ सत्यों का पाठ करें :—

निन्दक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मान।
निरमल तन मन सब करै, बकि-बकि आनहि आन।

यह ऐसा संसार है, जैसा सेमल फूल।
दिन दस के व्यवहार कौ, झूठे रंग न भूल॥

तन सराय मन पाहुरू, मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं, देखा ठोंकि बजाय॥

गो धन गज धन बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आये सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥

जाने ता बूझै नहीं, बूझि किया नहीं गौन।
अन्धे को अन्धा मिला, राह बतावै कौन॥

इस प्रकार कबीर का एक एक दोहा शत शत सूर्यों की तरह प्रकाश देता है और उनके कोटि कोटि दोहे अमर हैं।

कबीर सन्त थे, सच्चे सन्त। सन्त की महिमा महान है। सन्त तुलसीदास ने लिखा है :—

सन्त हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पै कहा न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता, पर दुख द्रवै सुसन्त पुनीता॥

वास्तव में—

सच्चा सन्त वही है जिसका मानस पर दुःखों से पिघला।
औरों की आँखों का आँसू जिसकी आँखों से वह निकला॥

कबीरदास ऐसे ही सच्चे सन्त थे। उनका चरित्र उज्ज्वल सन्त का चरित्र है। सन्त क्या है, इसकी महिमा कबीर ने मुक्त कण्ठ से गाई है, मानो वे अपने चरित्र में तन्मय होकर कह उठे :—

सन्त न छाँड़ै सन्तई, कोटिक मिलैं असन्त।
चन्दन भुवँगा बैठिया, सीतलता न तजन्त॥

खोद खाद धरती सहै, काट फूल बन राय।
कुटिल वचन साधू सहै, औरस सहा न जाय॥

बाबा तुलसीदास ने भी कहा :—

बूंद अघात सहै गिरि कैसे ।
खल के वचन सन्त सह जैसे ।।

कबीर एक कमाल के सन्त थे। उनको हम रहस्यवादी कवि की तरह अद्‌भुत सन्त देखते हैं। दुनिया में रहना और सन्त रहना, यह बड़ा कठिन कार्य है। किन्तु कबीर के लिये तो कुछ भी कठिन नहीं था, यहाँ तक कि वे ईश्वर के आगे भी हाथ फैलाना नहीं जानते थे। उन्हें अपने तप पर भरोसा था। उन्होंने मनुष्य को ईश्वर से पाप मुक्ति के लिये भीख माँगने का उपदेश नहीं दिया, अपितु इतना बल संचित करने का सन्देश दिया है कि मनुष्य अपने पाप आप काट सके।

इसका अर्थ यह नहीं कि कबीर को ईश्वर पर विश्वास नहीं था। कबीर सच्चे ईश्वरोपासक थे। वह ऐसे उपासक नहीं थे कि इधर पाप करते रहो उधर ईश्वर के आगे रो रोकर क्षमा माँगते रहो। ईश्वर पर पूर्ण विश्वास के उनके बहुत से दोहे हैं, एक दो देखिये :—

अण्डा पालै काछुई, बिन तन राखै पोख ।
यों करता सबकी करै, पालै तीनउ लोक ।।

कबीर क्या मैं चिंत हूँ, मन चिन्तै क्या होय ।
मेरी चिन्ता हरि करै, चिन्ता मोहि न कोय ।।

कुमोदिनी जलहर बसै, चन्दा बसै अकास ।
जो जाही की भावना, सो ताही के पास ।।

कबीर सन्त थे, समाज सुधारक थे, उपदेशक थे, तो क्या वे कवि नहीं थे ? कुछ विचारकों का कहना है कि कबीर केवल उपदेशक थे, कवि नहीं। परन्तु यह मिथ्या विचार है। कबीर संसार के सर्व-श्रेष्ठ कवियों में हैं, वे पण्डितों के कवि भी हैं और जन-साधारण के कवि भी। धन्य हैं कवि कबीरदास, भिखारी भी जिनके पदों को गा गाकर सोयी हुई भावनायें जगा देते हैं। कविता वह है जो हृदय को जगा कर नयी चेतना देती चली जाये, कविता वह है जो छिपे हुए सत्यों का उद्‌घाटन करे। कवि कबीर ने कितने ही रहस्य अपनी कविताओं में खोलकर रखे हैं। उन्होंने साधारण भाषा और सरल अभिव्यक्ति में बड़े बड़े गम्भीर भाव भरे हैं, देखिये :—

साईं के संग सासुर आई।
संग नसूती, स्वाद न माना, गा जीवन सपने की नाईं॥
जना चारि मिलि लगन सुधायौ, जना पाँच मिलि माड़ो छायो।
भयो विवाह चली बिनु दूलह, बाट जात समधी समझाई॥

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है, जिसके तीन भाग हैं— रमैनी, सबद और साखी। इनमें वेदान्त, हिन्दू मुसलमानों को खुली फटकार, संसार की असारता, हृदय की प्रेम भावनाओं, माया की प्रबलताओं, मूर्ति पूजा का विरोध, हज नमाज व्रत की व्यर्थता आदि के अनेक प्रसंग हैं। इन पदों की भाषा गीतों में काव्य की भाषा है, वैसे जन काव्य में सधुक्कड़ी भाषा है। कबीर की यह भाषा खिचड़ी भाषा के नाम से प्रसिद्ध है।

जिन आदर्शों को हमने गांधी जी में देखा, वे ही आदर्श हमें कबीर में मिलते हैं। कबीर मांस खाने के कट्टर विरोधी थे, अहिंसा

के अनुयायी थे। तभी उन्होंने कहा :—

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल ।
जो बकरी को खात हैं, तिनका कौन हवाल ।।

महात्मा गांधी ने मांस भक्षण का विरोध किया, अहिंसा के व्रत पर दृढ़ रहे। सभ्य मानव के लिये मांस खाना अन्याय ही नहीं, असभ्यता है। विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार बर्नार्ड शा भी मांस खाने के विरोधी थे। वे मांस नहीं खाते थे। एक बार एक दावत में जब उनके सामने मांस की प्लेट आई और उन्होंने उसे नहीं छुवा तो एक दोस्त ने कहा— "शा साहब, खाते क्यों नहीं ?"

शा ने उत्तर दिया— "मेरा पेट कोई कब्रिस्तान नहीं है जिसमें मुर्दे दफनाये जायें। अतः सभ्य कहलाने का दावा करते हो तो मांस खाना छोड़ो।"

हिन्दू मुस्लिम एकता के भी कबीर कट्टर प्रचारक थे। हिन्दुओं की कुरीतियों से दुखी होकर उन्होंने हिन्दुओं को बहुत फटकारा है, जैसे:—

पत्थर पूजे हरि मिलें तो मैं पूजुँ पहार ।
पूज पुजारी ले चला दे मूरति मुख क्षार ।।

ऐसे ही मुसलमानों को—

दिन को रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी कैसे खुशी खुदाय ।।

इस तरह दोनों को फटकारते हुए उन्होंने प्रेम और एकता का वह अमर सन्देश दिया है जो यदि अपनायें तो सुख शान्ति का

अमृत पीने को मिल सकता है।

गांधी जी ने सत्य को ही ईश्वर कहा है। इसी प्रकार कबीर भी सत्य की सुगन्ध को ही ईश्वर कहते हैं। उन्होंने ईश्वर को फूल की सुगन्ध से भी पतला कहा है। रूपक द्वारा कबीर के सत्य की सुगन्ध मौसम बेमौसम सदा फैलती रही और फैलती रहेगी।

इस प्रकार सन्त कबीर ने समाज के अन्तर में चिपटे हुए उन कीड़ों को खोद खोदकर निकाला है जो मानव सृष्टि में विष फैलाते जा रहे थे, अपनी करनी और कथनी से संसार को दिव्य दीपक दिये। सन्त के शब्द जीवन के लिये अनमोल मोती हैं।

४

सन्त गुरु नानक

परिस्थितियों के अनुसार महात्मा, सन्त अथवा अवतार का आविर्भाव होता है। जिस काल में जैसी परिस्थिति होती है उस काल में वैसी ही ईश्वरीय शक्ति प्रकट होती है। भक्ति, तपस्या, त्याग आदि भगवान् की शक्ति हैं। जो इनको प्राप्त होकर मानव कल्याण में लग जाता है वही सन्त है, वही साधु है, और वही ज्ञानी है। संसार के उद्धार के लिये जिसने अपने जीवन को आरती का जलता दीपक बना लिया वही सन्त है।

गुरु नानक का प्रादुर्भाव उन विषम परिस्थितियों में हुआ जिनमें मानव मानवता को भूल रक्तिम रास्तों पर चलने लगा था। इन्सान धर्म के नाम पर इन्सान का खून पीता था। पूजा स्थानों पर मजहब की तलवार का नंगा नाच हो रहा था। सत्य, प्रेम और अहिंसा के स्थान पर झूठ, घृणा और हिंसा की मनमानी थी। मनुष्य इतना गर्वान्धि था कि धर्म कर्म सब भूल ईश्वर के बन्दों पर ज़ुल्म कर रहा था। अधिक क्या मनुष्य ने माला फेंक दी थी और नंगी तलवार लिये नंगा नाच रहा था।

गुरु नानक का जन्म सम्वत् १५२६ कार्तिकी पूर्णिमा के दिन तिलवंडी ग्राम ज़िला लाहौर में हुआ था। इनके पिता का नाम कालूचन्द खत्री था और माता का नाम तृप्तादेवी। नानक देव बचपन से ही बड़े भोले और सन्त स्वभाव के थे। उन्नीस वर्ष की

अवस्था में इनका विवाह गुरदासपुर के मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्षणी से हुआ। सुलक्षणी देवी से इन्हें दो पुत्र रत्नों की प्राप्ति हुई। इनके एक पुत्र का नाम श्रीचन्द है, दूसरे का लक्ष्मीचन्द। ये ही श्रीचन्द आगे चलकर उदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हुए।

जिसका मन हरि में लग जाता है फिर उसे दुनिया में कुछ अच्छा नहीं लगता। पिता ने नानक देव को दुनियादारी एवं व्यापार आदि में वहुत फ़ँसाना चाहा पर वे न फँसे। एक वार पिता ने इन्हें व्यवसाय के लिये कुछ धन दिया जिसे इन्होंने साधु सन्तों में वाँट दिया।

गुरु नानक शुरू से ही भक्त थे। जो भक्त होता है वह त्यागी दयालु और प्रेमी होता है, उसका मन दुनिया में न लगकर साधु सन्तों में लगता है। वह हिंसा और अधर्म के विरोध में अपनी शान्त आवाज़ वुलन्द करता है। जवकि वहुत से स्त्री पुरुप वलात् मुसलमान वनाये जा रहे थे, जवकि मुसलमानों के प्रभाव से शास्त्रों का पठन-पाठन उठने लगा था, जव धर्म और उपासना के मूढ़ तत्वों को समझने की शक्ति कुन्द होती जा रही थी, जव वहुत से देवी देवताओं की उपासना के स्थान पर एकेश्वरवाद का प्रचार वढ़ रहा था, तव सन्त कवीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुण सन्त मत ही एक ऐसा मार्ग था जिस पर चल और चला कर गुरु नानक ने भारतीय संस्कृति और धर्म की गिरती हुई दीवारों को रोका।

गुरु नानक ने घर वार छोड़कर दूर दूर तक धर्म शान्ति और उपासना के सन्देश दिये, हिन्दू और मुसलमानों को भक्ति का ज्ञान मार्ग दिखाया। निर्गुण उपासना का प्रचार करते हुए वे स्थान

स्थान पर गये। यद्यपि गुरुजी कुछ विशेष पढ़े लिखे नहीं थे पर उनकी वाणी में कुछ ऐसी शक्ति थी कि ब्रह्म वाक्य निकलते थे।

गुरु नानक सिख-सम्प्रदाय के आदि गुरु हुए हैं। उनकी भक्ति और तेज का उस समय सर्वत्र प्रकाश फैला। केवल सिख ही नहीं देश और विदेश के कोटि कोटि जन उनकी वाणी-कमल के भौंरे थे, और आज भी है। भक्ति भाव से पूर्ण होकर जब वे भजन गाते थे तो भक्त-जन झूम उठते थे। यह खुशी की बात है कि गुरु नानक के भजनों में देश की कई भाषाओं के शब्द हैं। उनकी हिन्दी में पंजाबी, ब्रज, खड़ी बोली, अवधी आदि सभी भाषाएं हैं, भाषा इतनी सरल है कि भाव सीधे हृदय तक पहुँचते हैं और प्राणी आत्म-विभोर हो जाते हैं। जब ये गाते थे तो भक्ति और ज्ञान के रस का समुद्र उमड़ पड़ता था। संसार की अनित्यता, भगवद्‌भक्ति और सन्त स्वभाव के सम्बन्ध में इनके कितने ही भजन हैं। ज़रा दो चार छन्दों की गंगा में गोते लगाइये :—

इस दम दा मैंनू कीबे भरोसा,
आया आया, न आया न आया।
यह संसार रैन दा सुपना,
कहीं देखा, कहीं नाहिं दिखाया॥

सोच विचार करे मत मन में,
जिसने ढूंढा उसने पाया।
नानक भक्तन दे पद परसे,
निश दिन राम चरित मन लाया॥

जो नर दुख में दुख नहिं माने ।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कंचन माटी जानैं ॥
नहिं निन्दा, नहिं अस्तु तिजाके, लोभ मोह अभिमाना ।
हरष सोक तैं रहैं नियारो, नाहि मान अपमाना ॥
आसा मनसा सकल त्यागिकैं, जग ते रहै निरासा ।
काम क्रोध जेहि परसै नाहिं, न तेहि घर ब्रह्म-निवासा ॥
गुरु किरपा जेहि नर पे कीन्हीं, तिन्ह यह जुगति पिछानी ।
नानक लीन भयो गोविन्द सों, ज्यों पानी संग पानी ॥

इन भजनों में जो रस है वह आनन्द के साथ साथ ज्ञान भी देता है। दुःख और सुख से दूर रहो, निर्भय रहो, सोने को मिट्टी समझो, निन्दा और स्तुति से परे रहो, लोभ मोह और अभिमान में मत फँसो, काम क्रोध आशा और मनसा को त्याग कर हरिभजन करो। इसी से शान्ति मिलेगी, परम तत्व में तत्व मिल जायेंगे।

इस प्रकार ये हैं गुरु नानक के भजनोपदेश। उपदेश तो दुनिया में सभी दे सकते हैं पर सन्त वे ही हैं जो अपने दिये हुए उपदेशों पर चलें भी। सन्त गुरु की यह महिमा है कि उन्होंने जो कुछ कहा उस पर वे पहले चल लिये।

जो बड़े हुए हैं उन पर कष्ट भी बड़े बड़े आते हैं। जो आगे बढ़ता है पत्थर उसके पथ में अड़ा ही करते हैं। गुरु नानक देव ने जब अत्याचारों के विरोध में आवाज़ उठाई तो तत्कालीन शासक भड़क उठे। गुरुजी जब एमनाबाद गये, जहां कि अत्याचारों का बहुत ज़ोर था, तो वहाँ बाबर ने उन्हें कैद कर लिया। पर कैद

शरीर को किया जा सकता है, किसी की वाणी को नहीं। गुरुदेव सत्य कहने से न रुके।

जिसके पास सत्य का बल है उसको अपने पथ से कौन रोक सकता है। तकलीफ मनुष्य को जितनी दी जाती है उतना ही वह और निखरता है। सोना आग में तप तप कर ही कुन्दन बनता है। सरकार ने गुरुदेव को जितना तपाया उतने ही दमकते चले गये।

शान्ति को जितना दबाया जाता है उतनी ही क्रान्ति होती है। सन्त को तलवार वश में नहीं कर सकती। सत्य पानी की धार की तरह होता है जो लोहे से नहीं कटता।

लोहे के पिँजरे में सन्त की आवाज़ और भी तेज हो गई। वह बन्दीगृह की दीवारों को फोड़ फोड़कर निकलने लगी। गुरु नानक-देव के बन्दी होने से जन जन में हलचल मच गई, भक्तों के स्वर ऊँचे हुए, जेल की दीवारें काँपने लगीं, बाबर का सिंहासन हिल उठा। सन्त की शक्ति के सामने वह घबरा गया, और उसने नत-मस्तक होकर गुरु नानक को छोड़ दिया।

कारागृह की कठिन यन्त्रणायें सहने के बाद जब वे छूटे तो भारतीय एकता का सन्देश लिये भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक गये। नेपाल, भूटान, सिक्कम, तिब्बत, चीन, ईरान, अफ़गानिस्तान और अरब आदि को चरण रज से पवित्र किया। गुरु नानक विभिन्न धर्मावलम्बियों से पृथक् पृथक् मिले और उनमें समन्वय के भाव भरे। अधिकारियों, प्रजाजनों तथा धार्मिक कर्णधारों को बड़ी विनम्रता से उनकी त्रुटियाँ बताईं एवं उन्हें सदोपदेश दिये। स्थान स्थान पर

आपसी मेल जोल बढ़ाने के लिये संस्थायें स्थापित कीं, जहाँ सब लोग साथ बैठें, साथ जीमें और साथ भजन कीर्तन आदि करें।

गुरुजी का सिद्धांत था "एक पिता, एकस हम बालक", इस लिये भाईचारे से रहो। बुरे से नहीं, बुराई से घृणा करो। सारे सम्प्रदाय और सब व्यक्ति एक हैं। मीठी वाणी से दूसरे के हृदय जीतो।

सन्त नानक जी सच्चे साधु थे, उनका हृदय गंगाजल सा शुद्ध था। मन की शुद्धि के बिना मानव मैला ही है। गुरुजी ने उपदेश दिया कि "जगदीश्वर ही सब कुछ है। मानसिक पवित्रता ही सब कुछ है। मानसिक पवित्रता ही प्रथम धर्म है और श्रेष्ठ प्रार्थनीय तथा साधनीय वस्तु है।"

गुरु नानक देव के सन्देश जीवन और जगत के लिये अँधेरे में दीपक हैं। यहाँ हम उनकी कुछ वाणी अंकित करते हैं:—

"उसकी यह महिमा है कि उसके समान न कोई है, न था और न होगा।"

"तू जितना बड़ा है उतना ही बड़ा तेरा दान हो।"

"वे मनुष्य अधम हैं जो तुझ स्वामी को भूल बैठे हैं।"

"मनुष्य यदि चारों युग जीवै या इससे भी दसगुनी आयु उसकी हो जाये, और नवों खण्डों में वह विख्यात हो, सब लोग उसकी जय जय करने लगें, पर यदि परमात्मा ने उस पर कृपा दृष्टि नहीं की तो उसकी कुछ भी कीमत नहीं। तब दोषी भी उस पर दोषारोपण करेंगे। वह निर्गुणी को भी गुणी कर देता है और गुणी को और भी गुणी बनाने में समर्थ है।"

"केवल कह देने से मनुष्य न पुण्यात्मा बन जाते हैं न पापी, किन्तु वे तुम्हारे कर्म हैं, जिन्हें तुम अपने साथ लिखते जाते हो। तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ जाते हैं। आपही तुम जैसा बोते हो, वैसा खाते हो।"

"यदि किसी के नागरिकों का चरित्र उज्ज्वल है तो वह देश छोटा और ग़रीब होने पर भी महान है। चरित्र खो जाने पर सब कुछ खो जाता है। धन्य हैं वे महात्मा और सन्त जो चरित्र का निर्माण करते हैं। किसी देश का चरित्र बल ही वह बल है जिसके सामने समस्त पैशाचिक शक्तियाँ हार मान लेती हैं।"

भारतीय सन्तों के उदय से उन पैशाचिक शक्तियों का अन्त हुआ जो मनुष्य के अन्तर में छिपी हुई सृष्टि को चूर चूर और काट काटकर खाती रहती हैं, जो दुनिया में अन्धकार फैलाती हैं।

सन्त गुरु नानक उन भारतीय सन्तों में से हैं जिनकी स्वर लहरी से मनुष्य के मन को धोने वाली शीतल पावनी धारा बही, जिन्होंने तप तप कर धरती की आग वसन्त की सुगन्धित फुलवारी में बदली, जिन्होंने शान्ति की वह बर्फीली हवा चलाई कि आज भी कण कण शीतल और सुगन्धित है।

युग आये और चले गये, बड़े बड़े वैज्ञानिक चमत्कार हुए, हो रहे हैं, और होते रहेंगे। पर क्या उनसे सचमुच वह अमृत मिलेगा जिनसे चरित्र का उत्थान होता है, जिनसे मानव में आत्मबल बढ़ता है, जिनसे जीवन में शान्ति आती है?

सन्त गुरु नानकदेव ने देश, धर्म और जाति का जो आध्यात्मिक

उत्थान किया है वह सदा हरा भरा रहेगा। हमारे देश के पास चाहे वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्र न हों पर गुरु नानक देव जैसे वे महान सन्त हैं जो संसार को सुख और शान्ति देते हैं। धन्य है भारत जिसमें गुरु नानक देव की अमर वाणी है, जिससे सत्य, प्रेम और शान्ति के झरने निकले।

५

सन्त तुलसीदास

भारतीय संस्कृति के प्राण और विश्व साहित्य के कल्पतरु सन्त तुलसीदास इस लोक के सुख और परलोक के दीपक हैं। उनके उदय ने धर्म को जीवन दिया, समाज को चेतना प्रदान की, जीवन को सत्य दिये और साहित्य में चार चाँद जड़े। वे सन्तों के कण्ठ के गीत अब से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व श्रावण शुक्ला सप्तमी सम्वत् १५८९ में धरती पर आये और श्रावण शुक्ला सप्तमी को ही सम्वत् १६८० में स्वयम् को अपने शब्दों में छोड़ परलोक चले गये। देहधारी तुलसी आज हमारे सामने नहीं हैं पर अपने अमर काव्य और उज्ज्वल तपस्या में वे सदा सब के सामने हैं। वे अँधेरे से निकले और उजाले में ले आये। वे ऐसे सन्त हैं जिनका प्रकाश सर्वतोमुखी और सर्वकालीन है।

तुलसी की माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम दूबे है। इनकी जन्मभूमि राजपुर है। इनका विवाह एक परम सुन्दरी कन्या रत्ना से हुआ था। यही रत्ना ही तुलसी की चेतना है। रत्ना के उपदेश से ही तुलसीदास सन्त तुलसीदास बने।

कहानी बहुत प्रसिद्ध है कि तुलसी अपनी पत्नी रत्ना से अत्यधिक प्रेम करते थे। उनके लिये पत्नी से पल भर के लिये भी

पृथक् रहना कठिन था। तुलसी एक दिन के लिये भी रत्ना को माता पिता के घर नहीं जाने देते थे। एक दिन जब तुलसी कुछ समय के लिये किसी काम गये तो रत्ना यमुना पार अपने पीहर चली गई। तुलसी जब लौटकर आये और रत्ना को घर में नहीं पाया तो बहुत व्याकुल हुए। वे उसी समय रत्ना के पास चले।

समय आधी रात का था, अँधेरी काल-सर्पिणी की तरह खाने को आ रही थी, पानी बहुत ज़ोर से बरस रहा था, आकाश में बिजली कड़क कड़क कर प्राणों को कँपा रही थी, यमुना की तूफ़ानी बाढ़ किनारों को तोड़ती हुई गर्ज रही थी। किन्तु तुलसी के हृदय का प्रेम इस भंयकर काल रात्रि में तनिक भी कम्पित नहीं हुआ। वे अपनी प्रिया से मिलने को इतने व्यग्र थे कि तूफानी नदी में कूद पड़े। उस नदी में कोई लाश बही जा रही थी। इसी लाश को नाव समझ तुलसी उस पर सवार हो गये और उस पार जा पहुँचे, तथा पहुँच गये उस द्वार पर जिसमें उनके प्राणों की शान्ति सो रही थी।

दर्वाजा बन्द था, ऊपर चौखट पर एक काला सर्प लटक रहा था। तुलसी सर्प को प्रेम-डोर समझ उसे पकड़कर ऊपर छत पर पहुँच गये। छत पर उनकी प्राणप्रिया मीठी नींद सो रही थी। तुलसी ने जैसे ही उस दिव्य सुन्दरी के कपोलों पर उंगली रक्खी वैसे ही वह चौंककर उठी और अपने पास अपने प्राणधन को देख कर बोली–"आप और इतनी रात में, यहाँ तक कैसे आये ?"

तुलसी ने चकोर की तरह चाँद की तरफ लपकते हुए उत्तर दिया– "तुमने जो प्रेम-डोर द्वार पर लटका दी थी उसी को पकड़ कर

यहाँ चला आया।"

रत्ना ने द्वार पर जाकर देखा तो सर्प देखकर काँप उठी और पति की ओर प्रेम से देखती हुई बोली :—

लाज न लागत आपको, दौरैं आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम, तामे जैसी प्रीत।
तैसी जौ श्री राम महँ, होति न तौ भवभीत॥

रत्ना की यह बात तुलसी को लग गई। उनके हृदय में यह बात ऐसी चुभी कि तुलसी संसार को छोड़ कर सन्त हो गये। रत्ना को खोजते खोजते तुलसी राम को खोजने लगे। "हे राम! तुम कहाँ हो? राम! मेरे राम! दर्शन दो राम!"

रत्ना से गुरु-मन्त्र लेकर वे उसी समय विरक्त हो गये। उनके मन में राम और ओठों पर राम चरित्र मुखर हो उठा। प्रेमी तुलसी ने सन्त तुलसी का रूप ले लिया।

यद्यपि तुलसा को सबसे वड़ा गुरु मन्त्र उनकी पत्नी रत्ना ने दिया, पर तुलसी विद्वान् पहले ही हो चुके थे। वे संस्कृत, हिन्दी, अवधी, ब्रज आदि कितनी ही भाषाओं के पंडित थे। भारतीय संस्कृति, भारतीय धर्म और भारतीय इतिहास के वे मर्मज्ञ थे। इतिहास, दर्शन, पुराण, वेद आदि सबका उन्होंने मनन किया था। सत्संग और देशाटन से वे वहुत कुछ सीख चुके थे। इनके गुरु बाबा नरहरिदास थे। गुरु के आश्रम में ही गोस्वामीजी ने महात्मा शेपसनातन जी से वेद वेदाङ्ग दर्शन इतिहास पुराण आदि पढ़े।

इस प्रकार गुरुओं से शिक्षा और पत्नी से चेतना लेकर गोस्वामी जी ने गंगा तट पर आसन जमा लिया। यहीं गंगा तट पर तुलसीदास ने प्रसिद्ध ग्रन्थ रामायण की रचना की। रामायण मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र पर महाकाव्य है, जिसमें सन्तों के सर्वोज्ज्वल तत्त्व भरे पड़े हैं।

सन्त कौन है, सन्त का चरित्र कैसा होता है, सन्त और असन्त में क्या अन्तर है? इन सब पर तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' में बहुत से अनुभवों और मन्थन से लिखा है। सन्त के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है:—

वन्दउ सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोउ॥

*

सन्त सरल चित जगत-हित जानि सुभाउ सनेह।

संसार में चाहे सब कुछ मिल जाये पर यदि साधु सङ्ग नहीं मिला तो कुछ भी नहीं मिला, सत्सङ्ग के बिना जीवन वृथा है। और सत्सङ्ग वही है जहाँ साधु के दर्शन हैं। तुलसीदास ने कहा है:—

विधि-हरि-हर कवि कोविद वाणी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥

*

लहहि चार फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।

साधु चरित सुभ सरिस कपासू ।
निरस विसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा ।
बन्दनीय जेहि जग जस पावा ॥

जब हम उस साधु समाज की खोज में निकले जो अर्थ धर्म काम मोक्ष का दाता है तो वह हमें सन्त तुलसीदास में प्राप्त हुआ। सन्त तुलसीदास का 'रामचरित मानस' सच्चा साधु संग है। रामचरित मानस की चौपाई चौपाई में सन्त का उपदेश है। सन्त और असन्त का चरित्र चित्रण करते समय तुलसीदास ने वड़ा ही रोचक चित्र खींचा है। वन्दना करते हुए वे कहते हैं:--

बन्दऊँ सन्त असज्जन चरना ।
दुखप्रद उभय, बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेई ।
मिलत एक दारुण दुख देई ॥

*

सुधा-सुरा सम साधु असाधू ।

*

हानि कुसंग सुसंगति लाहू ।

जो सद् उपदेश दे वह सन्त है, जो जीवन की भलाई के लिये ज्योति का पथ दिखाता है वह साधु है। दुनिया में गुण और दोष दोनों ही हैं, सन्त गुणों को ग्रहण कर बाँटते हैं। हम बुद्धिमान हैं।

जिससे हानि हो वह काम हम क्यों करें? हम तो लाभ चाहते हैं, वह लाभ जो अमर है। सन्त तुलसीदास की वाणी में वह अमृत है जो अमर बनाता है। सन्त के उपदेश अँधेरे से उजाले में लाते हैं। न कोई ऐसा उपदेश है, न होगा जो तुलसीदास ने नहीं दिया। मानव को ऊँचा उठाने के लिये सन्त की रचना कोटि कोटि सन्देश है। 'रामचरित मानस' की हर चौपाई एक मौलिक सन्देश देती है।

तुलसीदास के सन्देश भक्ति, ज्ञान और अनुभूति के संगम हैं। हमारे सन्त परम विद्वान, अद्वितीय भक्त और चोटी के कवि हैं। वे भाषा के निर्माता, अनुभूतियों की कामधेनु और भावनाओं के सागर हैं। उनका अक्षर अक्षर प्राणवान है। उनके रचे रामचरित मानस, विनय पत्रिका, रामलला नहछू, दोहावली, बरवै रामायण, गीतावली, वैराग्य सन्दीपिनी आदि बारह ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में सन्त के दिये हुए वे शब्द हैं जो चेतना बन कर गली गली में प्रभाती गा रहे हैं। जन जागरण और संस्कृति का संसार में एक ही कवि है, और वह है तुलसीदास।

मानव चरित्र को जितना तुलसीदास ने ऊँचा उठाया है उतना और किसी समकालीन सन्त ने नहीं उठाया। उन्होंने माता, पिता, गुरु, भाई, पत्नी, शत्रु, मित्र आदि सभी के कर्त्तव्यों का विधान दिया है। माता सीता का चरित्र एक उज्ज्वल पत्नी और माता का चरित्र है, लक्ष्मण और भरत का चरित्र आदर्श भाइयों का चरित्र है, राजा दशरथ का चरित्र 'प्राण जाय पर वचन न जाई' राजा का चरित्र है, राम का चरित्र वीर क्षत्रिय और मर्यादा पुरु-षोत्तम का चरित्र है, हनुमान का चरित्र सच्चे सेवक का यशस्वी

रूप है। रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाथ के चरित्र भी नमूने के चरित्र हैं, जिनमें मानव शक्ति के कितने ही अद्भुत चमत्कार हैं। मन्दोदरी और सुलोचना जैसी सतियों के चरित्र रामायण में ही हैं।

इस प्रकार सन्त ने 'रामचरित मानस' के पात्रों के माध्यम से जीवन के लिये कोटि कोटि सन्देश दिये हैं, विशेष में सामान्य सत्य चरितार्थ हैं। जीवन की हर परिस्थिति के लिये उनके आदर्श वाक्य हैं।

क्रोध न करने के लिये तुलसीदास ने कहा है:—

क्रोध पाप का मूल।
जेहि बस जन अनुचित करैं, करैं विश्व प्रतिकूल।

कामी को चेतना देते हुए उन्होंने कहा:—

कामी कौन कलंक न लेही।

उत्तर काण्ड में गरुड़ जी के कागभुशुण्डि जी से सात प्रश्न और कागभुशुण्डि जी के प्रश्नों के उत्तर में तुलसीदास ने श्रेष्ठ आप्तवाक्य रचे हैं। गरुड़ जी ने पूछा—सबसे दुर्लभ शरीर कौन सा है? सबसे बड़ा दुःख क्या है? सन्त और असन्त का स्वभाव बताने की कृपा करो? पुण्य क्या है और पाप क्या है? मानस रोग क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर में तुलसीदास की वाणी सुनिये:—

नर-तनु सम नहिं कवनिउ देही।
जीव चराचर जाचत जेही॥
नरक-स्वर्ग अपवर्ग निसेनी।
ग्यान-विराग-भगति सुख देनी॥

सो तन धरि हरि भजहिं न जे नर ।
होहिं विषय रत मन्द मन्दतर ॥
काँच किरचि बदले जिमि लेही ।
कर ते डारि परस मनि देही ॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं ।
सन्त मिलन सम सुख कछु नाहीं ॥
पर उपकार वचन मन काया ।
सन्त सहज सुभाव खगराया ॥
सन्त सहहिं दुख परहित लागी ।
पर-दुख-हेतु असन्त अभागी ॥
दुष्ट उदय जग आरत हेतू ।
जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥
सन्त उदय संतत सुखकारी ।
विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ॥
परम धरम सुति विदित अहींसा ।
पर निन्दा सम अघ न गिरीसा ॥
सबकै निन्दा जे जड़ करहीं ।
ते चमगादुर होई अवतरहीं ॥
सुनहु तात अब मानस रोगा ।
जेहि ते दुख पावहि सब लोगा ॥

मोह सकल ब्याधिन कर मूला।
तेहि ते पुनि उपजइ बहु सूला ।।
काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा ।।
प्रीति करहिं जौ तीनिउ भाई।
उपजइ सन्निपात दुखदाई ।।

ये हैं सन्त तुलसीदास के वे सत्य जो सर्वहितकारी हैं। ममता, ईर्ष्या, हर्ष, विषाद, अहंकार, दम्भ, तृष्णा आदि ऐसे रोग हैं, जिनसे छूत की बीमारी की तरह बचने का सन्देश तुलसीदास ने दिया है। ये बीमारियाँ जब मनुष्य के चिपट जाती हैं तो करोड़ों औषधियों से भी ठीक नहीं होतीं, इनका उपचार केवल राम-भक्ति है। हरिभजन ही मनुष्य के उद्धार का मूल मन्त्र है। सन्त ने कहा है:—

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरय, यह सिद्धांत अपेल ।।

हरि भजन सन्त तुलसीदास का मूल मन्त्र है। राम भक्ति को ही सन्त ने नर तन का परम लक्ष्य माना है। राम ही जीवन सिद्धि के माध्यम हैं, राम ही बिगड़ी को बनाने वाले हैं, राम समर्थ हैं, जो निराधार को आधार देते हैं। तभी तो सन्त ने कहा है:—

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु, अजहि मसक ते हीन।
अस विचारि तजि संसय, रामहिं भजहिं प्रवीन ।।

तुलसीदास राम भक्त थे। रामायण के अक्षर अक्षर में उनके राम हैं। वे राम जिनके राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप

नहीं सताते थे, वे राम जो अखिल विश्व में रमे हुए हैं, वे राम जो दशरथ-सुत के साथ साथ परब्रह्म परमेश्वर हैं, जो हमारी संस्कृति भक्ति और शक्ति के स्वरूप हैं। उन राम की उपासना, उन राम की भक्ति ही तो 'रामचरित मानस' की रचना का मुख्य लक्ष्य है। विनीत तुलसीदास ने पूर्ण श्रद्धा से अपने राम के चरणों में कितनी लगन से नमस्कार किया है, देखिये:—

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी।
कवि कोविद कृतग्य संन्यासी ॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी।
धर्म निरत पंडित विग्यानी ॥
तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी।
राम नमामि नमामि नमामी ॥

तुलसीदास जहाँ महान सन्त थे वहाँ लौकिक रीतियों को भी खूब जानते थे। परिस्थिति विशेप के अनुसार उनकी वाणी की कितनी ही उक्तियाँ हैं। व्यवहार जगत के वे जागरूक कवि हैं। वे कितने बड़े मनोवैज्ञानिक थे, यह हमें उनकी पंक्ति पंक्ति से पता चलता है। जीवन और जगत के मन्थन से उन्होंने जो अमृत के झरने दिये हैं वे जीवन और जगत को सदा सींचते रहेंगे। कुछ उदाहरण देखिये :—

दोपु लखन कर हम पर रोपू, कहूँ सुधाई ते बड़ दोपू।
टेढ़ जानि संका सब काहू, वक्र चन्द्रमा ग्रसइ न राहू ॥

और—

जिमि स्वतन्त्र ह्वै बिगरै नारी।

नारि धरम पति देव न दूजा ।

*

जैसी हो होतव्यता तैसी बनै सहाय ।
आप न जावै ताहि पै ताहि तहाँ लै जाय ।।

*

धीरज धरम मित्र अरु नारी, आपद काल परखिये चारी ।

*

एहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा, सादर सासु-ससुर-पद-पूजा ।

*

हठ बस सब संकट सहैं, गालब नहुष नरेस ।

*

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।

*

दुष्ट संग जनि देहि विधाता ।
एहि ते भला नरक कर बासा ।।

तुलसीदास सन्त और भक्त पहले, पीछे कवि थे, पर उनका कवित्व गौण नहीं हुआ। वे सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली कवि हैं। उनके काव्य में उनसे पूर्व और बाद की सभी शैलियाँ हैं। वे रसों के कवि हैं। उनके भाव, उनकी भाषा, उनकी अभिव्यक्ति सभी में अद्‌भुत चमत्कार हैं। कोई ऐसा अलंकार नहीं जो उनके काव्य में नहीं, कोई ऐसी बात नहीं जो उन्होंने नहीं कही। बात यह है कि बात की बात कही, कविता की कविता लिखी और आराध्य की पूजा भी की। उनकी

बात की बात और कविता की कविता इस वर्षा वर्णन में देखिये:-

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन डरपति मन मोरा॥
दामिनी दमक रही घन माहीं।
खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं॥

बरषहिं जलद भूमि नियराये।
जथा नवहिं बुध विद्या पाये॥
बूंद अघात सहैं गिरि कैसे।
खल के वचन सन्त सहैं जैसे॥

छुद्र नदी भरि चली तोराई।
जस थोरेहु धन खल इतराई।
भूमि परत भा ढावर पानी।
जनु जीवहि माया लपटानी॥

सिमटि सिमटि जल भरहिं तलावा।
जिमि सद्गुन सज्जन पहि आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई।
होई अचल जिमि जिउ हरि पाई॥

हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परहि नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवाद तें लुप्त होहिं सद्ग्रन्थ॥

गोस्वामी जी कोरे भक्त नहीं थे, वे बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने भक्ति और ज्ञान का सामंजस्य किया है। उन्होंने कहा है— "भक्ति ज्ञानहि

नहिं कछु भेदा"। ज्ञान की जो वाणी स्वामी जी ने दी है वही तो जीवन सिद्धि की ज्योति है। आओ हम सब मिलकर सन्त की वाणी का अनुसरण करें और जग को अपने चरित्र से जगमगादें।

६

सन्त दादू

सावरमती नदी वेग से वह रही थी। लुओं के थपेड़ों से दूर दूर तक गर्म धूल आँखों में अन्धकार झोक रही थी। गर्म रेत से पैर जले जाते थे। हवा इतनी भयावनी थी कि परिन्दे पेड़ों के कोटरों में चिपके हुए थे, जलचर पानी की तह में मौन थे, और थलचर अपने अपने घरों में घुसे हुए थे।

किन्तु प्रकृति की इस विभीषिका में भी एक प्यासा ब्राह्मण लोदीराम सावरमती नदी की ओर जल पीने तेजी से चला जा रहा था। उसकी गति सावरमती की गति से कम न थी। उसके हृदय में, मस्तिष्क में, ओठों में अभावों की ज्वाला जल रही थी। न उसके पास धन था, न खाने को रोटी थी, न रहने को मकान था, न कोई औलाद थी, न किसी का सहारा था। फिर वह दुनिया में जीकर क्या करे? विचारी ब्राह्मणी का ध्यान कभी कभी उसके पैर डगमगा देता था, पर निराशा फिर उसे सावरमती में डूवने के लिये विवश कर देती थी।

उद्वेग में काँपते हुए लोदीराम ने नदी किनारे पहुँच जैसे ही डूवने को पैर वढ़ाया वैसे ही उसने देखा कि काठ का एक सन्दूक नदी के वीच में लहरों से टकराता हुआ वह रहा है। ब्राह्मण को प्राणों का भय तो था ही नहीं, वह जल में उतर सन्दूक तक पहुँच गया।

जल ही में उसने जो सन्दूक खोलकर देखा, तो देखता क्या है कि उसमें एक चाँद के टुकड़े सा शिशु खेल रहा है।

लोदीराम सन्दूक नदी से बाहर निकाल लाया। सन्दूक में लेटे हुए उस परम ज्योतिर्मय छोटे से बालक को अपनी गोद में निकाल लिया, खुशी से उछलता हुआ घर वापिस आया और ब्राह्मणी की गोद में भगवान् की कृपापूर्ण देन वह बच्चा दे दिया। ब्राह्मणी ने बच्चे को ईश्वर की दया मान कर बड़े वात्सल्य से पालना आरम्भ किया। देव की कृपा से ब्राह्मणी के स्तनों में दूध भी आ गया। इस रूप में लोदीराम को दादू नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

दादू का प्राकट्य सम्वत् १६०१ की चैत्र शुक्ला अष्टमी गुरुवार को अहमदाबाद में हुआ था। धर्मपिता और धर्ममाता ने इन्हें बड़े लाड़ चाव से पाला। बालक के आने से घर में ऋद्धि सिद्धियों का वास होगया, किसी बात की कमी न रही। माता पिता के प्यार से दादू भी दूज के चाँद की तरह दिनोदिन बढ़ने लगे। बचपन में ही इनकी भावनायें भवगान् की ओर थीं। इनकी लगन इतनी थी कि ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्हें वृद्ध रूप में दर्शन दिये और तत्त्व ज्ञान का उपदेश दिया।

कुछ ही समय बाद दादू जी दुनिया से विरक्त हो गये। ये सत्संग के लिये घर से निकल पड़े। इनका मन ज्ञान और भक्ति में पूर्ण रूप से रम गया। ये हर समय भजन, कीर्तन, पूजा पाठ, साधुसङ्ग आदि में लीन रहने लगे।

इनको वैराग्य में लीन देख माता पिता इन्हें घर पकड़ लाये और इनका बड़ नगर में विवाह कर दिया। पर क्या सांसारिक बन्धन

इनको बांध सकते थे ? उन्नीस वर्ष की अवस्था में ये फिर घर से निकल भागे और जीवन की रुई पिनते हुए ये शहरों में घूम वनों में पहुँचे, जहाँ इन्होंने बारह वर्ष तक कठिन तपस्या करके पूर्ण सिद्धि प्राप्त की। ये सदैव भक्ति रस में छके रहते थे। इनको वचन सिद्धि भी प्राप्त थी, पर ये चमत्कार प्रायः दिखाते नहीं थे। अन्तर्मुख रहकर अनन्त ज्योति के ध्यान, अभ्यास, स्मरण, जप, तप, पूजा, पाठ आदि में लय होने को ही ईश्वर प्राप्ति के श्रेष्ठ साधन मानते थे। अभ्यास करते करते ये सिद्ध साधु हो चुके थे।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, शान्ति, अपरिग्रह, वैराग्य, तितिक्षा, क्षमा, दया, समता, निडरता, एवं आर्जव आदि सात्विक गुणों की प्राप्ति हेतु साधना करने वाले साधु दादूदयाल जी भारत के सिद्ध सन्त हुए हैं। हमारे सन्त दादू के कितने ही अनुयायी आज भी दादूपन्थी नाम से प्रसिद्ध हैं। यद्यपि दादूजी ने कोई सम्प्रदाय नहीं बनाया लेकिन इनके अनुयायियों द्वारा स्वयम् ही ब्रह्म सम्प्रदाय के नाम से एक सम्प्रदाय चल निकला।

कहा जाता है कि दादूदयाल जाति के चमार थे, किन्तु इससे क्या ! 'हरि को भजे सो हरि का होय'। हरि भक्त दादू चाहे हरिजन थे पर अपनी भक्ति भावनाओं से वे पहुँचे हुए साधु हो गये। बड़े बड़े साधुओं और ज्ञानियों ने उनके चरण छुवे। हरिजन साधु दादू के ब्रह्म सम्प्रदाय दादू पन्थ में सन्त सुन्दरदास, गरीबदास, रज्जब जी, चतुर्भुज जी, मोहनदास जी जैसे कितने ही प्रसिद्ध सन्त हुए हैं।

सिद्धान्तों की दृष्टि से दादू कबीर के ही मार्ग के अनुयायी हैं, किन्तु इनका चलाया हुआ पन्थ दादूपन्थ के नाम से पृथक् प्रसिद्ध

है। निर्गुण पन्थियों के समान दादूपन्थी भी अपने आपको निरंजन, निराकार का ही उपासक मानते हैं। दादूपन्थी न तिलक लगाते हैं, न माला पहनते हैं, सफेद कपड़े पहनते हैं, हाथ में सुमिरनी रखते हैं, और 'सन्तराम' कह कर अभिवादन करते हैं।

दादू की वाणी कबीर की साखी से बहुत कुछ मिलती जुलती है। भाषा भी बहुत कुछ मिली जुली पच्छिमी हिन्दी है, जिसमें राजस्थानी का मेल है। भावनायें बहुत साफ और लगन की हैं। ईश्वर की व्यापकता का बहुत ही अनुभूति भरा चित्रण दादू की वाणी में है। जैसे——

घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़ैं ते और ॥

प्रभु के नाम की महिमा प्रायः सभी सन्तों ने गाई है। तुलसी, कबीर आदि ने भी ईश्वर के नाम को ही ईश्वर प्राप्ति का माध्यम माना है। सन्त दादू ने भी राम नाम का मुग्ध कण्ठ से कीर्तन किया है।

दादू नीका नाँव है, तीन लोक तत सार।
राति दिवस रटिबो करी, रे मन इहै विचार ॥

एकै अक्षर पीव का, सो तू सत करि जाणि।
एक नाम सत्गुरु कह्या, दादू सो परवाणि ॥

दादू नीका नाँव है, हरि हिरदै न बिसार।
मूरति मन माहि वसै, साँसै साँस सँभार ॥

निमिष न न्यारा कीजिये, अन्तर सूँ हरि नाम।
कोटि पतित पावन भये, केवल कहताँ राम ॥

जो राम नाम में लीन हो गया उसके हृदय में अनन्त ज्योति जगमगाने लगती है, उसकी वाणी से वे सन्देश फूटने लगते हैं जिनसे मानव का उत्थान होता है। सन्त का जीवन ज्ञान की पुस्तक है। वह अपने हृदय और बुद्धि से अमर जीवन देता है। साधु सन्त तो वही है जो अपनी अनुभूतियों से रहस्य को समझ कर समझा दे, और चरित्र निर्माण के लिये ऊँची शिक्षा दे। दादू दुनिया को बहुत सी विवेकपूर्ण भावनायें प्रदान कर गये हैं। उनकी कुछ ज्ञान-वाणी भिन्न भिन्न भावों की हैं।

ज्ञान सबसे उत्तम है। मन और इन्द्री से बच जो उपकार के मार्ग पर चलता है वही ज्ञान के पथ पर है। सारे प्राणियों में एक ही आत्मा है, परमात्मा सब में है। दो दोहे सुनिये--

मन इन्द्री पसरै नहीं, अहनिशि एकै ध्यान।
पर उपगारी प्राणिया, दादू उत्तिम ग्यान ॥
दादू एकै आतमा, साहिब है सब माहिँ।
साहिब के नाते मिलै, भेष पन्थ के नाहिँ ॥

साधु वह है जो विषय विकार से दूर है। सन्त समागम से ही प्राणी का उद्धार होता है। जो साधु स्वाद छोड़ सत्पथ पर है उसके संग से जीवन सुधरता है। साधु की महिमा महान है। दादू जी ने कहा है--

विष सुख माहीं रमि रह्या, माया हित चित लाय।
सोई सन्त जन ऊबरे, स्वाद छोड़ि गुण गाय ॥

साध मिलै तब ऊपजै हिरदै हरि की प्यास ।
दादू संगति साध की, अविगत पुरवै आस ॥

मनहीं सूँ मल ऊपजै, मन ही सूँ मल धोइ ।
सीख चलै गुरु साध की, तौं तू निर्मल होइ ॥

हरि साधू यों पाइये, अबिगत के आराध ।
साधू संगति हरि मिलै, हरि संगत सूँ साध ॥

हरि स्मरण के विना मानव जीवन निरर्थक है। जो प्रेम से प्रभु स्मरण में लीन है वही धन्य है । आत्मानन्द में ही सारे रस हैं। जिसके हृदय में आराध्य की मूर्ति है उसके हाथ में सकल पदार्थ हैं, दादू जी ने कहा है—

अह निसि सदा सरीर में, हरि चिन्तित दिन जाइ ।
प्रेम मगन लयलीन मन, अन्तर गति लौ लाइ ॥

दादू आनँद आतमा, अविनासी के साथ ।
प्राणनाथ हिरदै बसै, तौ सकल पदारथ हाथ ॥

विषय निन्दा प्रत्येक सन्त ने की है, वास्तव में विषय लिप्सा जीवन की प्रगति में बाधक है। जो स्वाद मुक्त है वही शुद्ध सन्त है ।

दादू विषय विकार सौं, जब लग मन राता ।
तब लग चीत न आवई, त्रिभुवन पति दाता ॥

स्वाद लागि संसार सब, देखत पर लै जाइ ।
इन्द्री स्वारथ साच तजि, सबै बँधाणे आइ ॥

काल कनक अरु कामिनी, परिहरि इनका संग।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यों दीपक ज्योति पतंग॥
ज्यौं घुन लागै काठ कौं, लौहै लागै काठ।
काम किया घट जाजरा, दादू वारह वाट॥

मनुष्य मनुष्य से माँग कर अपने आप को गिराता है, ईश्वर के सहारे के अतिरिक्त किसी का सहारा ताकना वेकार है। वह हर समय हरेक का मददगार रहता है। वह जैसे चाहता वैसे ही मनुष्य को चलना पड़ता है। हमारी डोर प्रभु के हाथ है, वही हमारा ठौर है और वही हमारा मित्र--

करण हार करता पुरिष, हमकौं कैसी चिन्त।
सब काहू की करत है, सो दादू का मिन्त॥
डोरी हरि के हाथ है, गल माही मेरे।
वाजीगर का वन्दरा, भावै तहँ फेरे॥
कहै जे तू राखै साइयाँ, तौ मारि न सक्कै कोइ।
वाल न वाँका करि सकै, जो जग वैरी होइ॥
हम जीवैं इहि आसरै, सुमिरण के आधार।
दादू छिटकै हाथ सूँ, तौ हमकूँ वार न पार॥

सुख कहाँ है? सुख केवल ईश्वर की शरण में है। वही जीवन है, वही ज्योति है और वही आनन्द है।

घर वन माही सुख नहीं, सुख है साँई पास।
दादू ता सूँ मन मिल्या, इन सूँ भया उदास॥

इक लख चन्दा आणि घर, सूरज कोटि मिलाइ।
'दादू' गुरु गोविन्द बिन, तौ भी तिमिर न जाइ॥

मनुष्य की जो सिद्ध स्थिति किसी शव के साथ श्मशान में होती है वही यदि हर समय रहे तो वैराग्य के परमपद को प्राप्त हो सकता है। वैराग्य साधु जीवन का सबसे बड़ा गुण है। अन्त में केवल शून्य ही रहता है तभी तो दादूजी ने कहा है--

यह घट काचा जल भरचा, बिनसत नाहीं बार।
यह घट फूटा जल गया, समझत नहीं गँवार॥

जब लगि साँस सरीर में, राम नाम ल्यों लाइ।
दादू देही देखताँ, सब किस ही की जाइ॥

दादू सबको पाहुणा, दिवस चारि संसार।
औसरि औसरि सब चले, हम भी इहै विचार॥

विरह के विना विजय नहीं। विरह की ज्वाला में जो ज्योति होती है वही जीवन को रास्ते दिखाती है। विरह से ही तो काव्य की उत्पत्ति हुई है। सन्त दादू जी में भी विरह की आग थी।

विरहिन रोवै रात दिन, झूरै मन ही माहिं।
दादू औसरि चलि गया, प्रीतम पाये नाहिं॥

राम विरहिणी ह्वै गया, बिरहिणि ह्वै गइ राम।
दादू विरहा वापुरा, ऐसे करि गया काम॥

तलफि तलफि विरहणि मरै, करि करि वहुत विलाप।
विरह अगनि में जल गई, पीव न पूछै बात॥

सहजै मनसा मन सधै, सहजै पवना सोइ।
सहजै पाँचो थिर भये, जे चोट विरह की होइ॥

शलभ दीपक पर जल कर शहीद हो जाता है तभी तो वह प्रम का प्रतीक है। प्रेम ही तो जीवन का सत्य है, जहाँ प्रेम है वहाँ स्वर्ग है। इस लिये दादू प्रेम के भँवरे थे।

प्रेम भगति माता रहै, ताला वेली अंग।
सदा सपीड़ा मन रहै, राम रमै उन संग॥

भँवरा लुबधी वास का, मोह्या नाद कुरंग।
दादू का मन राम सूँ, ज्यों दीपक ज्योति पतंग॥

भावुकता सन्त और कवि की निधि होती है। भावुक चाहता है कि वह प्रीतम के नयनों की पुतली वना रहे तभी तो दादू जी को यही पश्चाताप था कि——

दादू जीवण मरण का, मुझ पछितावा नाहिं।
मुझ पछितावा पीव का, रह्या न नैनहु माहिं॥

कीया मन का भावता, मेटी आग्याकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार॥

भक्ति के विना जीवन में क्या धरा है, भक्ति ही से तो सन्त पद प्राप्त होता है। हरि की भक्ति ही तो सन्त का उद्देश्य है। विना भक्ति के जीवन घृणास्पद है——

जा कारण जग जीजिये, सो पद हिरदै नाहिं।
दादू हरि की भगति विन, धृग जीवन कलि माहिं॥

कबीर की तरह दादू जी भी माया को दमकता हुआ जाल मानते रहे हैं। उन्होंने कहा है—

यह सब माया मिरिग, झूठा झिलमिल होय।
दादू चिलका देखि करि, सत करि जाना सोय॥

ये ही नहीं दादू जी के कितने ही उपदेश हैं। बुरा करने वाले को भी वे उपदेश देकर शान्त रहते हैं—

तू मुझको मोटा कहे, हौं तुझे बड़ाई मान।
साँई कूँ समझै नहीं, दादू झूठा ग्यान॥

जे तूँ समझै तौं कहूँ, साँचा एक अलेष।
डाल पात तजि मूल गहि, क्या दिखलावै भेष॥

दादूदयाल ने केवल आध्यात्मिक उपदेश ही नहीं दिये अपितु राष्ट्रीय एकता के लिये भी उनकी वाणी से अमृत बरसा, "हिन्दू तुरक न जाणूँ दोइ" जैसे प्रवचन भी दादू जी के हैं। समाज में घुसी हुई उन सभी कुरीतियों के प्रति दादूदयाल ने कुछ न कुछ कहा है, जिनसे समाज में दूषित कीड़े फैलते हैं, और जीवन नाश को प्राप्त होता है। सन्त के जीवन का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उसकी साधना और उसके चरित्र से मानव का व्यक्तिगत और सामाजिक उत्थान होता है, जीवन में पवित्रता आती है।

सन्त दादूदयाल प्रकट हुए और फिर छिप भी गये, पर मानव के लिये वे शाश्वत सत्य छोड़ गये जिनसे जीवन प्रकाशमान होता है। समाज में नई रोशनी आती है। मनुष्यों में मेल जोल बढ़ता है, उनमें सत्य, प्रेम और अहिंसा के सद्विचार बढ़ते हैं, और फिर एक

दिन होता है जब मानव अपने साधु-जीवन से देवत्व को प्राप्त होते हैं। सन्त दादू जी राष्ट्रीय, सामाजिक, मानसिक और मानवीय आत्मैक्य के उज्ज्वल दिवाकर हैं।

७

सन्त मलूक दास

"अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये, सब के दाता राम॥"

राम भरोसे मस्त गाने वाले, फक्कड़ सन्त मलूकदास औरंगज़ेब के समय में निर्गुण मत के नामी सन्तों में हुए हैं। इनकी गद्दियाँ, कड़ा, जयपुर, गुजरात, मुल्तान, पटना, नैपाल और काबुल तक में कायम हैं। ये बड़े चमत्कारी सन्त थे। एक बार इन्होंने एक डूबते हुए शाही जहाज़ को ऊपर उठा कर बचा लिया था।

ऐसे महिमावान सन्त मलूकदास का जन्म लाला सुन्दरदास खत्री के घर में बैशाख कृष्ण पंचमी सम्वत् १६३१ में कड़ा ज़िला इलाहाबाद में हुआ था। १०८ वर्ष की दीर्घ आयु में इन्होंने इहलोक लीला संवरण की। अपने जीवन में इन्होंने जो कुछ गाया, जो भक्ति का समुद्र उड़ेला, वह ज्ञान का कोष और रत्नों का भण्डार है।

हमारे सन्त प्रायः भक्त और कवि हुए हैं। इनके जीवन का इतिहास उनकी भक्ति और पद्यों में घुला-मिला रहता है। उसके भाव, उसकी उपासना, उसकी गतिविधि सब कुछ उसकी वाणी में मुखर रहती हैं। सन्त-वाणी ही सन्त के हृदय का दर्पण है।

जिसका हृदय शुद्ध है, जिसने स्वयं को राम-रस में घोल दिया, जो प्रेममय हो जाता है, जिसने काम, क्रोध, मद, लोभ आदि रोगों का त्याग कर दिया है, जिसके अन्तर की आँखें खुली हुई हैं, जो पशु-पक्षी आदि सभी में आत्मैक्य का अनुभव करता है वह सन्त है।

सन्त मलूकदास दुनिया के नश्वर सुखों से दूर राम नाम में लीन आर्ष कवि थे। राम नाम की महिमा उन्होंने मुग्ध कण्ठ से गाई है। जो सन्त होते हैं वे राम नाम में रमे रहते हैं। सन्त मलूकदास ने प्रेमपूर्ण वाणी में राम नाम के जो दोहे लिखे हैं वे राम भक्ति के अमृत स्रोत हैं। कुछ दोहे कण्ठस्थ कीजिये—

राम राम के नाम की, जहाँ नहीं लवलेस।
पानी तहाँ न पीजिये, परिहरिये सो देस॥

राम नाम जिन जानिया, तेई बड़े सपूत।
एक राम के भजन बिन, काँगा फिरे कपूत॥

उहाँ न कबहूँ जाइये, जहाँ न हरि का नाम।
डोगंवर के गाँव में, धोबी का क्या काम॥

राम नाम एकै रती, पाप के कोटि पहाड़।
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छार॥

राम नाम औषध करो, हिरदै राखो याद।
संकट में लौ लाइये, दूर करै सब व्याध॥

जिसकी जिह्वा पर राम नाम का दीपक जगमगाता रहता है उसके अन्तर में भक्ति और प्रेम का उमड़ना स्वाभाविक ही है।

मलूकदास भक्ति और प्रेम के बारह-मासी झरने थे। उनके हृदय से भक्ति भावना के प्रेम भरे वे दोहे फूटे हैं जो सन्त काव्य की श्रेष्ठ अनुभूतियाँ हैं। क्या ही अच्छा हो यदि संघर्ष और अशान्ति के विषैले काल में हम भगवद्-प्रेम के इन दोहों का रस लें :—

प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाही मैंन।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन॥

कठिन पियाला प्रेम का, पिये जो हरि के हाथ।
चारों जुग माता रहै, उतरै जिय के साथ॥

बिना अमल माता रहै, बिन लस्कर बलवंत।
बिना बिलायत साहेबी, अंत माहिं बेअंत॥

करै भक्ति भगवंत की, करै कबहुँ नहिं चूक।
हरि रस में राचो रहै, साँची भक्ति मलूक॥

सोई पूत सपूत, जो भक्ति करे चित लाय।
जरा मरन तें छुटि परै, अजर अमर होइ जाय॥

जिसके हृदय में भक्ति और प्रेम है उसकी वाणी से जो कुछ निकलता है वह उपदेश होता है। हमारे सन्तों ने मानव कल्याण के लिए कितने ही उपदेश दिये। बनावटी साधुओं के प्रति मलूकदास ने कहा है—

भेष फकीरी जे करै, मन नहिं आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिन के साथ॥

और जिनके हृदय में दया है, धर्म है, और मीठा बोलते हैं वे ही महान हैं :—

दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन॥

सब पानी की चूपरी, एक दया जग सार।
जिन पर आतम चीन्हिया, ते ही उतरे पार॥

प्राय: देखा जाता है कि वादविवाद में क्रोध बढ़ जाता है और फिर अनिष्ट ही होता है। इस बला से बचने के लिये मलूकदास ने इस प्रकार कहा है :—

मलूक वाद न कीजिये, क्रोधै देव बहाय।
हार मानु अनजान तें, बक बक मरें बलाय॥

गर्व मनुष्य के नाश की जड़ है। अहंकार मनुष्य की शक्ति की कमज़ोरी है। कोई अपनी सुन्दरता का घमण्ड करता है, किसी को अपनी ताकत का अभिमान होता है, कोई अपने धन के मद में किसी से बात नहीं करता। किन्तु तन या धन किस के साथ जाता है! दुनिया में केवल भलाई शेष रहती है। सन्त ने अपनी यह संवेदना इस प्रकार प्रकट की है :—

गर्व भुलाने देह के, रुचि रुचि बाँधै पाग।
सो देही नित देखि कै, चोंच सँवारे काग॥

गर्व न कीजे बावरे, हरि गर्व प्रहारी।
गर्वहि ते रावन गया, पाया दुख भारी॥

सुन्दर देही पाइ कै, मत कोइ करै गुमान।
काल दरेरा खायगा, क्या बूढ़ा क्या ज्वान॥

सुन्दर देही देखिकै, उपजत है अनुराग।
मढ़ी न होती चाम की, जीवन खाते काग॥

इस जीने का गर्व क्या, कहाँ देह की प्रीति।
बात कहत ढह जात है, बारू को-सी भीति॥

देही होय न आपनी, समझु परि है मोहिं।
अबहीं तें तजि राख तू, आखिर तजि हैं तोहिं॥

माँगने से बड़ा कोई पाप नहीं। आव, आदर, नयनों का स्नेह ये सब उसी समय चले जाते हैं जब कोई हाथ फैलाता है। सन्त तुलसीदास ने भी कहा है "तुलसी कर पर कर करहु, करतल करहु न कोय।" सचमुच माँगना और मरना समान है। इसलिये किसी को माँगना नहीं चाहिये। माँगने से तो मरना ही अच्छा है, सन्त बाबा मलूकदास ने कहा है:—

आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
यह चारों तबहीं गये, जबहिं कहा कछु देह॥

हर मनुष्य प्रभुता की चाह में पागल हुआ फिरता है। पर प्रभु की प्राप्ति के बिना प्रभुता दानी नहीं होती। बाबा जी ने बताया है:—

प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय॥

सन्तों ने जो उपदेश दिये हैं वे तभी दिये हैं जब उन पर चल चल कर वे स्वयम् तप लिये, जब वे तपते तपते सन्त हो गये। आश्चर्य तो यह है कि दुनिया में मनुष्य सोता हुआ जागता है और जागता हुआ सोता है। यह दुनिया खुली आँख सोने वालों की है। कोई विरला ही होता है जो जागता हुआ नहीं सोता। सन्तों की यह विशेषता रही है कि वे उन व्यसनों को त्याग चुके थे जो जीवन को कुरेद कुरेद कर खाते हैं। खुली आँखों सोने वालों को जागरूक होकर जगाने वालों की प्रभातियाँ सुनिये:—

सोते सोते जन्म गँवाया।
माया मोह में सानि पड़ो सो, राम नाम नहिं पाया॥
मीठी नींद सोये सुख अपने, कबहु नहिं अलसाने।
गाफिल होके महल में सोये, फिर पाछे पछताने॥

जिसका ईमान ठीक है वही जागता है। जिसका ईमान नहीं उसका कुछ भी नहीं। मलूकदास ने प्यार से कहा है:—

ऐ अजीज ईमान तू काहे को खोवै।
हिय राखै दरगाह में तो प्यारा होवै॥

लालच बुरी बला है। तभी तो मलूकदास ने भी लिखा है:— "सबसे लालच का मत खोटा।" यह लालच की लज्जत बड़ी मीठी किन्तु विषैली होती है। सन्त लालच से दूर थे:—

इस दुनियाँ नाचीज के तालिब हैं कुत्ते।
लज्जत में मोहित हुए, दुःख सहे बहुते॥
इस दुनिया नाचीज के जो आसिक होवै।
भूलै जात खुदाय को, सिर धुन धुन रोवै॥

इसलिये यदि इस चमकती हुई दुनिया का आनन्द लेना चाहते हो तो ऐसे लो जैसे कमल कीचड़ का रस लेता है, जैसे सूरज दुनिया को छूता है, जैसे "राकाँ वाँका" ने दौलत को देखा था। दुनिया दीखने में बहुत खूबसूरत है पर वास्तव में बड़ी ठगनी है। जो ठगाई में न आकर आनन्द लेते हैं वे ही तो परमानन्द को प्राप्त होते हैं।

दुनिया में फूल भी हैं और काँटे भी। सन्तों ने काँटे चूटे हैं और फूल चुग चुग कर दिये हैं। अब यह हमारा काम है चाहे शूलों पर चलें, चाहे फूलों पर। किन्तु अच्छा हो यदि हम यह सोच कर चलें कि मृत्यु बहुत निकट है, अतः हम कोई ऐसा काम न करें जिसे करके पछताना और दुःख उठाना पड़े।

बाबा मलूकदास के चरण चिह्नों में यही चित्रित है कि 'ऐ अजीज! तू जी और जीने दे' के सिद्धान्त से भी ऊँचा उठ, अर्थात् तू दूसरे के लिये स्वयम् को गला दे।

सन्त तुकाराम

एक दिन एक किसान अपने खेत से गन्ने कमर पर लाद कर चला। मार्ग में वालकों की भीड़ उसके साथ हो ली। किसान चलता जाता था और बच्चों को गन्ने वाटता जाता था। जव वह घर पहुँचा तो उसके पास केवल एक गन्ना वचा। घरवाली अपने पति के हाथ में सिर्फ एक गन्ना देख भभक उठी और उसने विचारे से गन्ना छीन उसकी कमर पर इस जोर से मारा कि गन्ने के दो टुकड़े हो गये।

पत्नी के हाथ से गन्ने की चोट खाकर किसान ने हँसते हुए कहा— "वड़ा अच्छा किया तुमने एक गन्ने के दो टुकड़े कर दिये, एक अपने लिये और एक मेरे लिये। लो एक तुम चूस लो और एक मैं चूस लूंगा।"

यह है सन्त तुकाराम की सहन शक्ति का एक नमूना और वह भी उस समय का जव वे सन्त नहीं गृहस्थी थे। गृहस्थ जीवन की ऐसी घोर घटनाओं ने ही तो तुकाराम को एक दिन पूर्ण सन्त वना दिया। आये दिन की आपत्तियों की आग में तप तप कर ही तो वे कुन्दन से पारस हो गये। कहीं जो असफल और दुखी सांसारिक होता है वही तो किसी दिन सन्त नहीं वन जाता!

श्री तुकाराम का जन्म सम्वत् १६६५ में दक्षिण के देहू नामक गाँव में हुआ था। इनकी माता का नाम कनका वाई था और पिता

का नाम बोलोजी था। यह परिवार भगवद्भक्त था और श्रेष्ठ माना जाता था। तुकाराम का विवाह तेरह वर्ष की आयु में ही हो गया था। वधू का नाम रखूबाई था। वह दमे की बीमार निकली। इसलिये तुकाराम की दूसरी शादी हुई। दूसरी बहू 'जिजाई' बड़ी ही कर्कशा आई। तुकाराम जी के सावजी और कान्हा जी दो भाई थे। सावजी बड़े थे और कान्हा जी छोटे।

तुकाराम जी के पिता बोलोराम जी साधु प्रकृति थे। जब वृद्ध हुए तो वे घर-गृहस्थी तथा काम काज सब छोड़ विरक्त हो गये। तुकाराम के बड़े भाई साहब जी पहले से ही विरक्त थे। अतः घर का सारा बोझ तुकाराम पर ही आ पड़ा। उस समय इनकी अवस्था सतरह वर्ष की थी। इन्होंने बड़ी चतुरता से सारा काम सँभाला। कुछ समय तक दैव की कृपा रही और काम ठीक चलता रहा।

पर चार वर्ष बाद तुकाराम जी पर दुःख पर दुःख आने लगे। संकट के पहाड़ उन पर टूट पड़े, उनकी परीक्षा पर परीक्षा होने लगीं, माता पिता का देहावसान हुआ, बड़े भाई की पत्नी स्वर्ग सिधारीं, छोटे भाई का परिवार अपना परिवार सभी को कमाकर खिलाना इनके लिये दुर्भर होने लगा। काम चला नहीं। जिन पर इनका रुपया था उन्होंने करवट नहीं ली, उल्टे ये कर्जदार होने लगे। ये सब प्रपंच सन्त प्रकृति के विचारे तुकाराम के वस के कैसे हो सकते थे।

साधु को ठगने वालों की दुनिया में कमी नहीं, ये भी बार बार ठगे गये। एक बार किसी ने इनको मुलम्मा चढ़े हुए पीतल के ज़ेवर

सोने के मोल बेच दिये। एक बार ये कुछ माल बेचकर ढाई सौ रुपये घर ला रहे थे। रास्ते में एक दुखिया मिल गया। उसे देख कर इन्हें दया आ गई और अपने सब रुपये उसे दे दिये।

घर में पैसा नहीं रहा। कुछ समय बाद इनकी पत्नी और पुत्र भी चल बसे। दु:ख और शोक की सीमा न रही, मानो तमाम दु:ख तुकाराम पर इसलिये टूटे कि वे इस दुनिया के प्रपंचों से दूर भाग भगवान् की शरण में चले जायें।

अन्ततोगत्वा यही हुआ। दुनिया की ज्वाला से झुलसे हुए तुकाराम राम की शरण खोजने लगे। उन्होंने भगवान् के भजन में लौ लगा ली। सारे जंजालों को छोड़ वे ईश्वर की उपासना में लीन हो गये। अपने आराध्य को पुकारते हुए कभी वे इस मन्दिर में जाते तो कभी उस मन्दिर में दिखाई देते। कभी इन्द्रायणी के इस तट पर गाते तो कभी इन्द्रायणी के उस तट पर भजन करते। कभी इस पर्वत पर एकान्त स्थल में ज्ञानेश्वरी या एक नयी भागवत का पारायण करते तो कभी उस पर्वत पर नाम स्मरण करते रहते। आज यहाँ हरिकीर्तन में मस्त हैं तो कल वहाँ हरिभजन का आनन्द ले रहे हैं।

श्रम भी एक प्रकार की ईश्वरोपासना है। तुकाराम की पूजा का एक रूप श्रम भी है,— उन्होंने श्री विश्वम्भर बाबा के बनवाए हुए श्री विट्ठल मन्दिर की जो बहुत टूट फूट गया था अपने हाथ मरम्मत की। इस प्रकार कठिन साधनाओं के फलस्वरूप श्री तुकार जी की चित्तवृत्ति ईश्वर भजन में दृढ़ होती चली गई।

जो प्रभु से लौ लगा लेता है उसके कण्ठ से गीत फूटने

हैं। प्रेम के समुद्र से ही तो कविता के मोती निकलने लगते हैं। कीर्तन करते करते तुकाराम जी के कण्ठ से "अभंग" निकलने लगे। बड़े बड़े विद्वान् ब्राह्मण और साधु सन्त इनकी ज्ञानमयी कविताओं को श्रवण कर रस विभोर हो जाते थे और नत हो जाते थे सन्त की प्रेमभरी भावनाओं के आगे।

यह संसार है, इसमें पत्थर बन कर रास्ता रोकने वालों की कमी नहीं। जैसे जैसे सन्त तुकाराम का प्रभाव बढ़ने लगा वैसे ही वैसे वेद वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित तथा कर्मनिष्ठ ब्राह्मण इनसे चिढ़ने लगे। उनको तुकाराम जी की तुकें अच्छी नहीं लगीं। भला एक शूद्र जाति वाले के मुख से श्रुत्यर्थ बोधक मराठी अभंग सुन कर वे कैसे न धधक उठते। भला एक शूद्र को एक सन्त मान कर उसकी पूजा कैसे हो सकती है।

उन्होंने हाकिमों से मिल कर तुकाराम को देहू से निकल जाने की आज्ञा दिलादी। इस पर तुकाराम जी पण्डित रामेश्वर भट्ट के पास गये और विनीत होकर बोले-- "मेरे मुख से जो ये अभंग निकलते हैं, सो भगवान् पाण्डुरंग की आज्ञा से ही निकलते हैं। आप ब्राह्मण हैं, ईश्वरवत हैं। आपकी आज्ञा है तो मैं अभंग बनाना छोड़ दूंगा, पर जो अभंग बन चुके हैं और लिखे रखे हैं उनका क्या करूं"?

भट्टजी ने कहा-- "उन्हें नदी में डुबा दो।"

ब्राह्मण की आज्ञा मान कर तुकाराम जी ने ऐसा ही किया, भगवद्भक्ति के सारे अभंग इन्द्रायणी नदी में डुबा दिये। सन्त ने अभंगों की वहियाँ इन्द्रायणी में डुबो तो दीं पर उनके हृदय को

चोट बहुत लगी। वे बहुत दुखी हुए। उन्होंने अन्न जल त्याग दिया, विट्ठल मन्दिर के सामने एक शिला पर बैठ गये, और उन्होंने प्रतिज्ञा करली कि या तो भगवान् मिलेंगे या इस शरीर का ही अन्त होगा।

भक्त तुकाराम का अनशन और सत्याग्रह देख भगवान् का आसन डोल उठा। तुकाराम को अन्न-जल लिये जब तेरह दिन बीत गये तो श्री पाण्डुरङ्ग ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिये। वे बाल वेश धारण करके सन्त के सामने प्रकट हो गये। तुकाराम जी ने उनके चरणों को अपनी आँखों के जल में डुबो दिया। भगवान् ने सन्त को उठा कर अपनी छाती से लगाया और कहा— "तुम्हारे अभंग इन्द्रायणी नदी में से मैंने तभी निकाल लिये थे। वे डूबे नहीं हैं, तुम्हारे भक्तों में मैं बाँट आया हूँ, उनकी वाणी पर वे गूंज रहे हैं।"

इस साक्षात्कार से तुकाराम जी को अलौकिक आनन्द और परम शान्ति मिली। इस साक्षात्कार के बाद वे पन्द्रह वर्ष तक इस भूतल पर सत्य, प्रेम और शान्ति के उपदेश देते रहे। जो भी इनके पास आता वही अमृत लेकर जाता था।

जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है। रामेश्वर भट्ट जिन्होंने तुकाराम जी के अभंग इन्द्रायणी नदी में डुबवा दिये थे एक दिन जब इन्द्रायणी में स्नान करके निकले तो उनके शरीर में भयानक आग लग उठी। वे तड़प उठे। रात को उन्हें स्वप्न में सन्त ज्ञानेश्वर के दर्शन हुए और उनसे कहा कि सन्त तुकाराम जी की शरण में जाओ तभी तुम्हें शान्ति मिलेगी। भट्ट जी सन्त की शरण में गये और सन्त ने उन्हें अपनाकर उनका ताप [illegible] किया।

अब तो सन्त तुकाराम की प्रतिष्ठा चारों ओर फैल गई। बड़े बड़े ब्राह्मण उन्हें अपना गुरु बनाने में गौरव मानते थे। छत्रपति शिवाजी ने भी सन्त तुकाराम से प्रार्थना की कि वे उसे अपना शिष्य बना लें, पर तुकाराम जी ने कहा कि समर्थ गुरु रामदास जैसे सिद्ध तपस्वी जिनके गुरु हैं मैं उन्हें शिष्य कैसे बना सकता हूँ। फिर भी शिवाजी तुकाराम जी के उपदेशों में प्रायः शामिल होते रहते थे और उनके भजन कीर्तन में बड़ा आनन्द लेते थे।

सन्त तुकाराम जी के कितने ही चमत्कार प्रसिद्ध हैं। दूहू के आस पास लोगों में इनकी कितनी ही चमत्कारों भरी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। सम्वत् १७०६ में कृष्णा दोयज के दिन अपने चमत्कार और उपदेश छोड़ वे इस लोक से विदा हो गये। उनका मृत शरीर किसी ने नहीं देखा। कहते हैं वे सशरीर ही इस संसार से गये और वैकुण्ठ सिधारने के बाद भी बहुत बार अपने भक्तों में आये।

दूहू और लोह गाँव में सन्त के स्मारक आज भी उनकी तस्वीर उपस्थित करते हैं। पर वे तो जड़ स्मारक हैं, चेतन स्मारक तो सन्त के अभंग उपदेश हैं। उनकी अभंग वाणी जगत की अमूल्य आध्यात्मिक निधि है। आओ तनिक उनके अभंग उपदेशों का भी आनन्द ले लें :—

बस, केवल आशा तृष्णा से बिल्कुल खाली हो जाओ, तुम्हें सच्चिदानन्द की प्राप्ति हो जायेगी।

अभिमान का मुँह काला है और उसका काम अंधेरा फैलाना है।

स्वाँग बनाने से भगवान् नहीं मिलते। निर्मल चित्त

की प्रेम भरी चाह नहीं तो जो कुछ भी करो अन्त में केवल आह ही मिलेगी। लोग जानते हैं, जानने पर भी अन्धे बने रहते हैं।

वाद-विवाद जहाँ होता है वहाँ खड़े रहोगे तो फंदे में फँसोगे। मिलो उन्हीं से जो सर्वतो भाव से हरि की शरण में हों।

जिसका जैसा भाव होता है उसी के अनुसार ईश्वर उसके पास या दूर है एवं उसे देता लेता है।

जहाँ उसके नाम का घोष होता है, उस स्थान में नारायण भय नहीं आने देता।

जिसका नाम पापों को नाश करता है, जो तेज का समुद्र है, तुकाराम उसकी शरण में सर्व-भाव से है।

पर द्रव्य और पर नारी की अभिलाषा जहाँ हुई वहीं से पतन आरम्भ हो गया।

और ये हैं सन्त तुकाराम के कुछ दोहे:—

लोभी के चित धन बैठे, कामी के चित काम।
माता के चित पूत बैठे, तुका के मन राम॥

कहे तुका जग भूला रे, कह्या न मानत कोय।
हाथ पड़े जब काल के, मारत फोरत डोय॥

तुका मिलन तो भला जब मन सू मन मिल जाय।
उपर उपर माटी घसी, उनकी कौन बराय॥

कहे तुका भला भया, हुआ सन्तन का दास।
क्या जानूं कैसे मरता, न मिटती मन की आस ॥

सन्त का ईश्वर में अटल विश्वास होता है। उसकी सिद्धि का साधन भगवद्भक्ति है। हमारी सन्त परम्परा में श्रद्धा भक्ति और प्रेम इच्छा ज्ञान और क्रिया के एकीकरण हैं। सन्त अपनी चित्त-वृत्तियों को लेकर अपने भगवान् की उपासना करता है। सन्त तुकाराम के जीवन का सारा सार भगवद्भक्ति मात्र है। उनकी ही वाणी में उनकी ये भावनायें बोलती हुई सुनिये:—

विट्ठल का नाम संकीर्तन ही मेरा सब कुछ साधन है। विट्ठल का नाम लेते ही मेरा मुँह मीठा हो गया और मुझे सुख मिला।

मेरी दृष्टि नारायण के मुख पर सन्तुष्ट होकर फिर पीछे नहीं लौटती।

तेरा नाम ही मेरा तप, दान, अनुष्ठान, तीर्थ, व्रत, सत्य, सुकृत, धर्म कर्म, नित्य नियम, योग, यज्ञ, जप ध्यान, ज्ञान, श्रवण, मनन, निद्धयासन, कुलाचार, कुल धर्म, आचार विचार और निर्धार है। नाम के अतिरिक्त और कोई धन मेरे पास नहीं है।

जहाँ भी बैठें, खेलें, भोजन करें, वहाँ तुम्हारा नाम गायेंगे, राम कृष्ण नाम की माला गूथ कर गले में डालेंगे।

तुका कहता है गोविन्द से यह अखिल काल सुकाल है।

माता से बच्चे को यह नहीं कहना पड़ता कि तुम मुझे सँभालो। माता तो स्वभाव से ही उसे अपनी छाती से लगाये रहती है। इसलिये मैं भी सोच विचार क्यों करूँ, जिसके सिर जो भार है वह तो है ही। बिना माँगे ही माँ बच्चे को खिलाती है और बच्चा कितना भी खाये खिलाने से माँ नहीं अघाती। खेल खेलने में बच्चा भूला रहे तो भी माता उसे नहीं भूलती, बरबस पकड़ कर उसे छाती से चिपटा लेती है और स्तनपान कराती है। बच्चे को कोई भी पीड़ा हो तो माता भाड़ की लाई सी विकल हो उठती है, अपनी देह की सुध भुला देती है और बच्चे पर कोई चोट नहीं आने देती। इसलिये मैं भी क्यों सोच विचार करूँ, जिसके सिर जो भार है वह तो है ही।

लौकिक व्यवहार छोड़ने का काम नहीं, वन-वन भटकने या भस्म और दण्ड धारण करने की भी कोई आवश्यकता नहीं। कलियुग में यही उपाय है कि नाम कीर्तन करो, इसी से नारायण दर्शन देंगे।

सन्त तुलसीदास ने भी कहा है:—

कलि में केवल नाम अधारा।

और इस प्रकार राम नाम लेते लेते सन्त तुकाराम जी ने "राम राम वंदना" कर ली।

"हम अपने गांव चले। हमारा राम राम वंदना। अब हमारा

तुम्हारा यही मिलना है। यहाँ से जन्म बन्धन टूट गया। अब हम पर दया रखना। तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। कोई निज धाम को पधारते हुए 'विट्ठल विठ्ठल' वाणी बोलो। मुख से राम कृष्ण कहो। तुकाराम वैकुण्ठ को चला।"

समर्थ गुरु सन्त रामदास

एक दिन एक साधु सङ्गम पर ब्रह्म यज्ञ कर रहे थे। उधर से एक विधवा स्त्री ने आकर उन्हें प्रणाम किया। इस पर आशीर्वाद देते हुए साधु ने कहा:— "अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती भव" अर्थात् हे सौभाग्यवती ! तू आठ पुत्रों वाली हो। पर उस स्त्री का पति तो मर चुका था। वह उसी के शव के साथ सती होने जा रही थी। अतः स्त्री ने पूछा— "इस जन्म में या दूसरे जन्म में ?"

समर्थ साधु ने दृष्टि ऊपर उठाई और कहा— "शव को यहाँ ले आओ !" लाश के सामने आते ही रामदास ने श्री राम नाम लेकर उस पर तीर्थोदक जल छिड़का। जल का छिड़कना था कि मृतक "राम राम" उच्चारण करता हुआ तुरन्त उठ बैठा। इस प्रकार समर्थ सन्त की शक्ति से जो पुनर्जीवित हुए उनका नाम गिरधर पन्त था और उन की वह पत्नी सती अन्नपूर्णा बाई। जीवित होकर जब गिरधर पन्त ने समर्थ गुरु के चरण छुवे तो उन्होंने दो पुत्रों का आशीर्वाद और दिया। कालान्तर से उस ब्राह्मण दम्पति के दस पुत्र हुए और उन्होंने प्रथम पुत्र सन्त रामदास के चरणों में अर्पित कर दिया। वह समर्पित सुत उद्धव गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध है। समर्थ गुरु के और भी ऐसे कितने ही चमत्कार प्रसिद्ध हैं।

ऐसे चमत्कारी समर्थ गुरु सन्त रामदास का उदय वर्तमान

दक्षिण हैदराबाद के अन्तर्गत औरंगाबाद जिले के जाम्ब ग्राम में सम्वत् १६६५ में चैत्र शुक्ला नवमी रामनवमी के दिन हुआ था। इनकी माता का नाम राणुबाई और पिता का नाम सूर्याजी पन्त था। समर्थ गुरु का बचपन का नाम नारायण है।

बचपन में नारायण बड़े उधमी थे। पेड़ों पर चढ़ना, एक डाल से दूसरी डाल पर और एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदना, पर्वतों पर चढ़ना उतरना, उछलना, कूदना, फाँदना इनको बड़ा अच्छा लगता था। ये ही इनके खेल थे। लेकिन उत्पाती होने के साथ ये चतुर भी बहुत थे। पाँच वर्ष की अवस्था में ही इनका उपनयन संस्कार हो गया था। लिखना पढ़ना ब्रह्म कर्म हिसाब आदि इन्होंने बहुत शीघ्र ही सीख लिये थे। बचपन में ही ये सूर्य देव को नित्य दो हजार नमस्कार करते थे। आठ वर्ष की आयु में इन्होंने श्री हनुमान को प्रसन्न किया और श्री रामचन्द्र जी के दर्शन किये। भगवान श्री राम ने स्वयं इन्हें दीक्षा दी और इनका नाम रामदास रखा।

अब बालक नारायण श्री रामदास हो गये। रामदास का हर पग उत्थान की ओर बढ़ने लगा। इनकी भगवद्भक्ति और वैराग्य की ओर रुचि देखकर इनके माता पिता ने इनका विवाह निश्चित कर दिया। जब ये बारह वर्ष के हुए तो इनके विवाह की तैयारी हुई। विवाह मंडप में वर-वधू के बीच अन्तःपट डालकर ब्राह्मण मंगल श्लोक बोलने लगे। पहले मंगलाचरण के बाद सब लोगों ने जैसे ही "शुभलग्न सावधान" कहा, वैसे ही रामदास सावधान होकर विवाह मंडप से ऐसे भागे कि बारह वर्षों तक घर वालों को फिर उनका पता ही नहीं लगा।

फेरों पर से भाग रामदास ने तैरकर गोदावरी नदी को पार किया, और फिर किनारे किनारे पैदल चल कर नासिक पंचवटी पहुँचे। पंचवटी में इन्हें श्री रामचन्द्र जी के फिर दर्शन हुए।

राम के सामने इन्होंने एक "करुणा दर्शक" द्वारा बड़ी ही करुणापूर्ण विनय की और फिर गोदावरी व नन्दिनी के संगम के पास एक गुफा में निवास करने लगे। वहाँ इन्होंने "श्री राम राम जय जय राम" त्रियोदशाक्षर मंत्र का जाप किया। कहते हैं कि इन्होंने छः महीने तक जल में खड़े रह कर इस मन्त्र का उच्चारण किया और फिर रामायण, वेद-वेदान्त, उपनिषद, गीता, भागवत आदि ग्रन्थों का मनन किया। इस प्रकार निरन्तर जप तप और साधना के बाद जब ये अपने गाँव लौटे तो इनसे किसी ने कहा कि तुम घूमते फिरते हो और तुम्हारे घर तुम्हारी मां तुम्हारी याद में रो रो कर अन्धी हो गई है। यह सुन कर रामदास जी तुरन्त ही माता के दर्शनार्थ घर गये। द्वार पर से आवाज़ दी—"जय जय रघुवीर समर्थ"। अलख सुन कर माता भिक्षा लेकर द्वार पर आई, पर समर्थ ने कहा—"यह भिक्षा मांगने वाला कोई वैरागी नहीं है।"

मां ने आवाज़ पहचान ली और उद्विग्न होकर बोली—"कौन? मेरा बेटा नारायण!"

"हां माता जी! मैं ही हूँ।"

और यह कह कर समर्थ ने माता के चरणों में अपना मस्तक रख दिया। २४ वर्ष बाद माता और पुत्र का मिलन हुआ। समर्थ ने मां की आँखों पर अपना हाथ फेरा, मां की आँखों में फिर से ज्योति आ गई। इसके बाद समर्थ ने माता को कपिल की गीता सुनाई और फिर आज्ञा लेकर गोदावरी के तट पर चले गये।

इस तरह निरन्तर तपस्या, तीर्थयात्रा, परोपकार, पूजा पाठ और रामचन्द्र जी के दर्शन करते हुए उन्होंने मादुरी क्षेत्र में अपना आसन लगाया। समर्थ की ख्याति दूर दूर फैल चुकी थी। उनके चमत्कारों से बड़े बड़े सन्त प्रभावित थे। उस समय के बड़े बड़े सन्त समर्थ के उपदेशों पर चलते थे और समर्थ ने मानव तथा देश के कल्याणार्थ सन्तों का एक आदर्श पंचायतन मंडल बनाया।

अपने समय में समर्थ गुरु रामदास की चारों ओर धाक थी। साधु सन्तों के अतिरिक्त उस समय के राजा महाराजा भी इनके शिष्य थे। इतिहास प्रसिद्ध वीर शिवाजी समर्थ गुरु रामदास के बहुत ही प्रिय और आज्ञाकारी शिष्य रहे हैं।

कहते हैं कि समर्थ गुरु रामदास की सारी तपस्या का उद्देश्य देश का उद्धार था। मुस्लिम आक्रान्ताओं से वे भारत को मुक्त देखना चाहते थे। उस समय औरङ्गज़ेब जैसे मुस्लिम राजाओं ने हिन्दू धर्म और संस्कृति पर घोर अत्याचार कर रखे थे। भारत के कण कण में उन्होंने जंज़ीरें डाल दी थीं। समर्थ गुरु ने इन अत्याचारों के विरोध में शिवाजी को तैयार किया, अपनी तपस्याओं से उनमें अथक शक्ति भरी और अपनी कुशल नीति से देश को मुस्लिम आक्रमणों से सुरक्षित किया। बड़े बड़े मुस्लिम आक्रान्ताओं के दम घुटवा दिये।

सुलझे हुए नीति निपुण सन्त रामदास ने स्थान स्थान पर साधुओं के मठ स्थापित किये। कहा जाता है ये मठ शिवाजी की गुप्त चौकियां थीं। यही नहीं कितनी ही गुप्त गुफाओं में साधु वेशधारी समर्थ के शिष्य शिवाजी के सिपाही थे।

समर्थ गुरु के हृदय में न जाने कौन सी शक्तिमयी चेतना थी कि उस समय के बड़े बड़े राजाओं की ताकतों ने हार मान ली। हर कदम पर उनके शिष्य शिवाजी की जीत हुई। हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म का स्वर ऊँचा हुआ। मन्दिरों में शंखों की आवाज़ सुनाई देने लगी।

चमत्कार प्रसिद्ध हैं कि समर्थ गुरु ने अपने तप बल से कितनी ही बार शिवाजी के प्राण बचाये। एक बार समर्थ गुरु एक पेड़ के नीचे बैठे थे। कहीं से घूमते हुए एक ज्योतिषी उनके पास आ बैठे। समर्थ गुरु ने एक कुंडली बना कर उनके सामने रखी और कहा "जरा इसका फल देखिये।"

ज्योतिषी ने कुंडली देखकर कहा कि जिसकी यह कुंडली है उसकी तो आज ही मृत्यु है।

समर्थ ने कुंडली उलटी करके रखदी। थोड़ी ही देर में घोड़े पर चढ़ा हुआ एक नौजवान आया और उसने समर्थ गुरु के चरण छुए। समर्थ ने आशीर्वाद स्वरूप एक मुट्ठी मिट्टी उठाकर नौजवान को दी। नौजवान ने वह मिट्टी अपने पल्ले में बाँध ली और चला गया।

लगभग दो घन्टे बाद वही नौजवान लहू में लथपथ लौटा। समर्थ ने वह कुंडली फिर सीधी की और ज्योतिषी से कहा— "जरा इस कुंडली को फिर देखिये।" ज्योतिषी ने कुंडली देखते ही चौंककर कहा— "यह तो कुंडली बदल गई। महाराज, आप समर्थ हैं, भाग्य की लिपि बदल सकते हैं। मैं तो कुंडली का फल देखने वाला साधारण ज्योतिषी हूँ।"

इस प्रकार जिसकी भाग्य लिपि समर्थ की शक्ति से बदल गई वह नौजवान वीर शिवाजी थे।

संक्षेप में ये हैं समर्थ गुरु के चमत्कार। उनके चरित्र से हमारे सन्त का एक नया दृष्टिकोण मिलता है, और वह यह कि जहाँ सन्त मानव का मानव से आध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ते रहे हैं वहाँ समर्थ ने मानव को राष्ट्रीय चेतना भी दी है। उन्होंने कर्मठ रहकर कुशल मन्त्री की तरह देश को विधर्मियों और विदेशियों से बचाया। ये ही समर्थ गुरु रामदास शिवाजी को राज्य से भी अधिक प्रिय और जीवन से भी अधिक मूल्यवान थे। तभी तो उन्होंने एक बार द्वार पर आये समर्थ गुरु की झोली में यह पर्चा लिख कर डाल दिया कि शिवाजी के पास जो कुछ है वह सब गुरु को अर्पित करता हैं।

समर्थ के चमत्कार और चरित्र पर तो दृष्टि डाली। आओ अब तनिक उन के उपदेश भी सुन लें।

जो अखिल संसार में सदा सर्वदा, सरल, प्रिय, सत्यवादी और विवेकी होता है तथा निश्चयपूर्वक कभी मिथ्या भाषण नहीं करता वह सर्वोत्तम श्री रामचन्द्र जी का सेवक इस संसार में धन्य है।

जो दीनों पर दया करने वाला मन का कोमल, स्निग्ध, कृपाशील और रामजी के सेवक गणों की रक्षा करने वाला है, वह रामचन्द्र जी का दास संसार में धन्य है।

रे मन ! क्रोध की उत्पत्ति मत होने दे। संत संग में बुद्धि का निवास हो। दुष्ट संग छोड़ दे, मोक्ष का अधिकारी बन।

वासना के ही कारण सारे दुःख मिलते हैं। इस लिये जो विषय वासना त्याग देता है वही सुखी है।

जो बिना आचरण किये ही नाना प्रकार की बात करता है परन्तु जिसका पापी मन उसे मन ही मन में धिक्कारता है, जिसके मन में कल्पनाओं की मनमानी दौड़ चलती है, ऐसे मनुष्य को ईश्वर की प्राप्ति कैसे होगी।

देह की रक्षा करने के लिये यत्न किया तो भी अन्त में काल ले ही गया। अतः मन, तू रामचन्द्र की भक्ति कर और इस संसार की चिन्ता छोड़दे।

रे मन! सत्संग सर्व संगों से छुड़ाने वाला है। उसे तुरन्त मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह संग साधक को भवसागर से शीघ्र पार करता है। सत्संग दैत्य भाव का समूल नाश करता है।

इस प्रकार सन्त परम्परा में समर्थ गुरु रामदास का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऐसे शक्तिसम्पन्न सन्तों के सहारे ही मानव धरा पर सुख और शान्ति से रहता है। प्राणी को प्राणी के निकट लाने में सन्त का जितना योग है उतना किसी भौतिक साधन का

नहीं। सन्त वाणी मानव कल्याण की वाणी है। धन्य है हमारा देश जिसने एक से एक महान सन्त दिये।

शान्ति चाहते हो तो सन्तों के बताये हुए रास्ते पर चलो और देश को उन दुष्टों की कुटिलता से बचाओ जो हाथ में माला और बगल में छुरी रखकर भारत माता की गर्दन काटते हैं।

समर्थ गुरु सन्त रामदास का सामर्थ्य सन्तों का वह ओज है जिसमें ज्वाला भी है और शान्ति भी, जिसके तेज में तरास भी है और जोड़ने की ताकत भी। समर्थ बनो, यह हमारी संस्कृति और समर्थ सन्त का सन्देश है।